पल्लव

भाग 2

कक्षा 12 के लिए केन्द्रिक हिन्दी की पाठ्यपुस्तक

अनिल विद्यालंकार
शशिकुमार शर्मा
अनिरुद्ध राय

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्
NATIONAL COUNCIL OF EDUCATIONAL RESEARCH AND TRAINING

प्रथम संस्करण
फरवरी 1990
फाल्गुन 1911
P.D. 35T–NSY

प्रकाशन सहयोग

सी.एन. राव, *अध्यक्ष*, प्रकाशन विभाग

प्रभाकर द्विवेदी *मुख्य संपादक* — यू. प्रभाकर राव *मुख्य उत्पादन अधिकारी*
दिनेश सक्सेना *सम्पादक* — सुरेन्द्र कान्त शर्मा *उत्पादन अधिकारी*
नरेश यादव *सम्पादन सहायक* — टी.टी. श्रीनिवासन *सहायक उत्पादन अधिकारी*
कर्ण कुमार चड्ढा *वरिष्ठ कलाकार*

आवरण
[illegible] जोशी

मूल्य : रु. 6.00

प्रकाशन विभाग में सचिव, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्, श्री अरविंद मार्ग, नई दिल्ली 110016 द्वारा प्रकाशित तथा शगुन कम्पोजर्स, 92-B, कृष्णा नगर, गली नं. 4, सफदरजंग एन्क्लेव, नई दिल्ली 110029 में लेजर टाइप सेट होकर, जे.के.ऑफसेट, जामा मस्जिद, दिल्ली–110 006 में मुद्रित।

आमुख

राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् के तत्वावधान में विद्यालय-स्तर पर विभिन्न शैक्षिक विषयों के पाठ्यक्रमों, पाठ्यपुस्तकों आदि के निर्माण का कार्य लगभग ढाई दशकों से हो रहा है । राष्ट्रीय शिक्षा नीति-1986 के लागू होने के साथ ही ऐसी शिक्षण-सामग्री की आवश्यकता का अनुभव किया जाने लगा जो नई शिक्षा नीति के उद्देश्यों की प्राप्ति में सहायक हो। इस नीति के अनुसार शिक्षा बाल-केन्द्रित होगी और छात्रों के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाएगा। नई शिक्षा-नीति में भारत के राष्ट्रीय जीवन के लिए आवश्यक कुछ महत्त्वपूर्ण मूल्यों को केन्द्रिक शिक्षाक्रम के रूप में स्थान दिया गया है। यह एक दूरगामी शिक्षा नीति है और यदि इसका पालन सही ढंग से किया जाए तो भारत के नव-निर्माण में इससे महत्वपूर्ण योगदान मिल सकता है।

नई शिक्षा योजना की महत्वपूर्ण विशेषता उसकी बाह्य सरंचना का गठन नहीं है, अपितु वह परियोजना एवं दृष्टिकोण है जो शिक्षा का संबंध राष्ट्रीय विकास के साथ जोड़ने पर बल देता है। इस दृष्टि से नवीन पाठ्यपुस्तकों के निर्माण में निम्नलिखित सिद्धांतों का विशेष रूप से समावेश किया गया है :

1. ऐसी पाठ्यसामग्री एवं शैक्षिक क्रियाओं का समावेश जिनसे बच्चों में राष्ट्रीय लक्ष्यों—जनतांत्रिकता, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद, सामाजिक न्याय तथा राष्ट्रीय एकता के प्रति चेतना एवं आस्था उत्पन्न हो और उनमें तर्कसंगत वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास हो।

2. पाठ्यचर्या एवं पाठ्यसामग्री भारत की जीवन-परिस्थितियों तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित हो और उनमें वांछित भावी विकास की दिशा भी परिलक्षित हो।

3. पाठ्यपुस्तकें बच्चों के भावात्मक एवं बौद्धिक उत्कर्ष, चरित्र-निर्माण तथा स्वस्थ मनोवृत्ति के विकास की दृष्टि से प्रेरणादायी सिद्ध हों, उनके द्वारा छात्रों में स्वयं शिक्षा एवं अधिकाधिक ज्ञानार्जन की उत्कंठा जाग्रत हो और वे निर्धारित पाठ्यविषय तक ही सीमित न रहकर विशद् एवं व्यापक अध्ययन के लिए जिज्ञासु तथा तत्पर बने रहें।

4. नई शिक्षा नीति के आधारभूत सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए पाठ्य सामग्री के चयन में केन्द्रिक शिक्षाक्रम से संबंधित विषय सामग्री एवं जीवन-मूल्यों पर विशेष बल हो।

5. सांप्रतिक एवं भावी जगत् को सुखद सुंदर बनाने वाली जीवन परिस्थितियों की ओर संकेत करने वाले पाठों का समावेश किया गया हो।

उपर्युक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए विविध विषयों के पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक निर्माण की योजना तैयार की गई है। इस कार्य को सभी दृष्टियों से परिपूर्ण एवं प्रामाणिक बनाने के लिए राष्ट्रीय स्तर के विषय-विशेषज्ञों, अधिकारी विद्वानों एवं शिक्षकों का सहयोग प्राप्त किया गया है। इस संदर्भ में केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा परिषद् की हिन्दी समिति के अध्यक्ष डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव तथा अन्य सदस्यों के सहयोग के लिए मैं विशेष आभारी हूँ।

परिषद् के सामाजिक विज्ञान एवं मानविकी शिक्षा विभाग के अध्यक्ष डॉ. अनिल विद्यालंकार (अब अवकाश प्राप्त) और रीडर डॉ. शशिकुमार शर्मा (अब अवकाश प्राप्त) ने विभाग में अपने कार्यकाल के दौरान इस पुस्तक के संपादन का कार्य किया । विभाग के डॉ. अनिरुद्ध राय ने इसका अंतिम प्रारूप तैयार किया तथा बड़े परिश्रम से इसका संपादन किया। मैं अपने इन सभी सहयोगियों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ।

जिन कृती लेखकों ने अपनी रचनाएँ इस पुस्तक में सम्मिलित करने की अनुमति दी है, उनके प्रति हम विशेष रूप से अनुगृहीत हैं।

आशा है, छात्रों की भाषिक तथा साहित्यिक रुचियो के विकास की दृष्टि से यह पुस्तक उपादेय सिद्ध होगी। इनके परिष्कार की दृष्टि से सुविज्ञजनों द्वारा भेजे गए सुझावों और परामर्शों का हम सदा स्वागत करेंगे।

पी.एल.मल्होत्रा
निदेशक
राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद्

आभार

इस पुस्तक के निर्माण में कृपापूर्ण योगदान के लिए राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद् निम्नलिखित विद्वानों के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती है—

डॉ. रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव, *अध्यक्ष, हिन्दी समिति, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड,* सुश्री कमल वासुदेव तथा डॉ. हरिश्चंद्र, *सदस्य, केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड,* श्री निरंजन कुमार सिंह, डॉ. आनंद प्रकाश व्यास, डॉ. कृष्णदत्त पालीवाल, डॉ. मान सिंह वर्मा, डॉ. सुधांशु चतुर्वेदी, डॉ. एन. सुंदरम, डॉ. सुवास कुमार, डॉ. सच्चिदानंद सिंह साथी, डॉ. कमल सत्यार्थी, डॉ. जयपाल सिंह तरंग, श्री भागीरथ भार्गव, डॉ. (श्रीमती) संतोष माटा, श्री कौस्तुभ पंत, डॉ. श्याम बिहारी राय, श्री सुरेन्द्र पाल मित्तल ।

हिन्दी का स्वरूप

भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने सन् 1873 में अपनी डायरी 'कालचक्र' में लिखा है,- "हिन्दी नई चाल में ढली"। यह नई चाल की हिन्दी लगभग वही है जिसे हम आज भी लिखते-पढ़ते हैं, भले ही विकासक्रम में उसका रूप उत्तरोत्तर निखरता गया हो। हिन्दी की एक लंबी ऐतिहासिक परंपरा है, जिसमें भारतेन्दु के समय में परिवर्तन होने लगा था। यह परिवर्तन पूर्ववर्ती परिवर्तनों से गुणात्मक रूप से काफी भिन्न था।

काव्य-भाषा के रूप में हिन्दी की लगभग एक हज़ार वर्ष की बड़ी ही समृद्ध परंपरा है। गद्य के रूप में भी उसकी परंपरा कम पुरानी नहीं है। आधुनिक गद्य अथवा खड़ी बोली का गद्य तो हिन्दी की परिधि में आता ही है, विद्यापति की मैथिली, मीरा की राजस्थानी, जायसी और तुलसी की अवधी, सूर और बिहारी की ब्रजभाषा भी हिन्दी में ही शामिल है और उन भाषाओं में रचित साहित्य को हिन्दी-साहित्य ही माना जाता है। परवर्ती काल में जन-जीवन और युग की आवश्यकताओं के अनुकूल उसमें खड़ी बोली के साहित्यिक रूप का विकास हुआ और वही आज की हिन्दी है, भारतेन्दु की नई चाल वाली हिन्दी का निखरा हुआ रूप। इस लंबी ऐतिहासिक परंपरा ने हिन्दी को बहुत व्यापक आयाम प्रदान किया है।

इस परंपरा का विस्तार आज भी विभिन्न जनपदीय बोलियों अथवा लोक भाषाओं के साथ उसके घनिष्ठ और जीवंत संबंध में दिखाई पड़ता है। हिन्दी एक विशाल क्षेत्र की भाषा है। इस क्षेत्र में अनेक जनपदीय बोलियाँ हैं – पूरब में मैथिली, मगही, भोजपुरी आदि, मध्य में बुंदेली, छत्तीसगढ़ी, बघेली, निमाड़ी आदि, पश्चिम में मारवाड़ी, मेवाड़ी, हाड़ौती, ढूँढाणी, बाँगरू, कौरवी, हरियाणवी आदि और उत्तर में गढ़वाली, कुमायूँनी, हिमाचली आदि पहाड़ी बोलियाँ। ये बोलियाँ इन

जनपदों की बोलचाल की भाषाएँ हैं। किंतु हिन्दी इन बोलियों के बीच एक संबंध सूत्र अथवा संपर्क-भाषा का काम करती है। यही नहीं, इस विशाल क्षेत्र में शिक्षा का माध्यम भी हिन्दी ही है, ये बोलियाँ नहीं। अतः हिन्दी ही जीवन के विविध क्षेत्रों– सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक आदि से संबंधित समस्त क्रिया-कलापों के संवहन की भाषा है। इस प्रकार इन बोलियों से हिन्दी का बहुत ही जीवंत संबंध है। वह इनसे अपनी जीवन-शक्ति प्राप्त करती है। यह उनकी शब्द-संपदा, नए-नए प्रयोग, मुहावरे, कथन के अनूठे ढंग और भंगिमाएँ ग्रहण और आत्मसात करती चलती है। जिससे एक ओर तो उसका लोक-जीवन से सान्निध्य बना रहता है और दूसरी ओर उसकी अभिव्यंजना-शक्ति और सामर्थ्य का निरंतर विकास होता रहता है।

जीवंत भाषा होने के साथ ही हिन्दी का विकास आधुनिक भाषा के रूप में हो रहा है। आधुनिक भाषा का सर्वप्रमुख लक्षण है– आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप भावों और विचारों की अभिव्यक्ति की क्षमता। आज मानव-जीवन में बड़ी तीव्र गति से परिवर्तन और विकास हो रहा है। वैज्ञानिक, प्रौद्योगिक, प्राविधिक, मानविकी और समाजशास्त्रीय सभी क्षेत्रों में नूतन ज्ञान का संचार, नए-नए विचारों और दृष्टिकोणों का विकास इतनी तीव्रगति से हो रहा है कि उन्हें अभिव्यक्त करने के लिए उन्हीं के समानांतर भाषा का भी आधुनिकीकरण आवश्यक है। इस दृष्टि से हिन्दी आधुनिक और गतिशील भाषा सिद्ध हो चुकी है। विगत पचास वर्षों में विज्ञान, प्रौद्योगिकी, वाणिज्य, प्रशासन आदि से संबंधित हिन्दी की शब्द-संपदा तीव्र गति से संवर्द्धित हुई है और नए शब्दों तथा नए पदों का निर्माण हुआ है। इस क्रम में पारिभाषिक शब्दावली का विशेष विकास हुआ है। हिन्दी ने अन्य भारतीय भाषाओं से ही नहीं, अपितु विदेशी भाषाओं के भी हज़ारों शब्दों को अपनाया है और अपनी प्रकृति के अनुसार उनका रूप बदल कर उन्हें पूर्णतः आत्मसात कर लिया है। इस प्रकार वह केवल कविता और साहित्य की ही भाषा नहीं है, वरन् आज के समग्र जीवन की वाणी बन गई है।

शब्द-संपदा के संवर्द्धन में शब्द-निर्माण की प्रक्रिया का विशेष महत्त्व है। इस प्रक्रिया के अनेक रूप हो सकते हैं, जैसे – कभी दूसरी भाषाओं के शब्दों को ज्यों-का-त्यों ग्रहण कर लेना, कभी मूल शब्द

लेकर अपनी प्रकृति के अनुसार उसका रूप परिवर्तन कर लेना, कभी उपसर्ग और प्रत्यय द्वारा नए शब्द का निर्माण कर लेना, कभी जनपदीय बोलियों से शब्दों को ले लेना आदि। उदाहरणतः इस संकलन के पाठों में कैंसर, एस्बेस्टस, डी.डी.टी., कॉस्टिक सोडा, सिल्ट, टिकट, कंकरीट, रिपोर्ताज आदि अनेक शब्द अंग्रेज़ी भाषा से ज्यों के त्यों लिए गए हैं और अपने मूल रूप में ही प्रयुक्त हैं, जब कि गैसीय, कार्बनिक आदि में अंग्रेज़ी मूल शब्द के साथ हिन्दी प्रत्यय 'ईय' और 'इक' लगाकर उनके विशेषण रूप बनाए गए हैं। प्रदूषण, आनुवंशिक, विकिरण आदि शब्द हिन्दी के ही हैं और उपसर्ग अथवा प्रत्ययों की सहायता से निर्मित हैं। पर्यावरण, रसायन, परावैद्युत बहिःस्राव आदि अनेक पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग इन पाठों में हुआ है। ''रसायन और हमारा पर्यावरण'' (एन.एल.रामानाथन) निबंध पढ़ने से वैज्ञानिक शब्द-संपदा तथा शब्द-निर्माण-प्रक्रिया को समझने में सहायता मिल सकती है। इसी प्रकार ''उतरी स्वप्नपरी : हरित क्रांति'' (फणीश्वरनाथ 'रेणु') निबंध में आहार, पूरब, मुलुक, पैन-पुलिया आदि अनेक आंचलिक शब्दों के प्रयोग मिलेंगे। निस्संदेह इन सभी स्रोतों से हिन्दी शब्द-संपदा निरंतर विकसित हो रही है और इससे आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के साथ-साथ हिन्दी का भी आधुनिक रूप विकसित हो रहा है।

क्षेत्रीय और राष्ट्रीय दृष्टि से हिन्दी के दो स्वरूप हैं – एक ओर वह हिन्दी भाषी जनता की संस्कृति की वाणी है, यह उसका जातीय स्वरूप है। दूसरी ओर वह समग्र राष्ट्र की वाणी है। इस रूप में वह अंतरप्रांतीय संपर्क की भाषा का काम करती है और भारत की सामाजिक संस्कृति की संवाहिका है। अखिल भारतीय संपर्क भाषा के रूप में वह अन्य राष्ट्रीय भाषाओं से भी शब्द-संपदा और भाषिक प्रयोगों को ग्रहण करती है और समृद्धशाली बनती है।

अखिल भारतीय स्तर पर भी हिन्दी के दो रूप हैं, लोक व्यवहार के स्तर पर हिन्दी का व्यवहार कश्मीर से कन्याकुमारी तक और कोहिमा से कच्छ तक हम देखते हैं, विशेषतः तीर्थ-स्थानों, प्रमुख व्यापारिक और औद्योगिक केन्द्रों आदि स्थलों पर तथा फिल्म, रेडियो, दूरदर्शन आदि संचार माध्यमों द्वारा। यह सार्वदेशिकता तो हिन्दी की सहजात प्रकृति है। इसे भारतीय विद्वानों, विचारकों और संत-महात्माओं ने मध्यकाल में ही

पहचान लिया था और इसी कारण दक्षिण के आचार्यों ने इसके माध्यम से संत-साहित्य के निर्माण पर बल दिया था। अपनी इसी सार्वदेशिक प्रकृति के कारण हिन्दी नवजागरण काल तथा स्वतंत्रता संग्राम में संपूर्ण देश की प्रतिनिधि भाषा बनी और राष्ट्रीय चेतना और जागृति की वाणी बनकर उसने संपूर्ण देश को स्वतंत्रता संघर्ष के लिए अनुप्राणित किया था।

भारतीय संविधान के अनुसार हिन्दी संघ की राजभाषा है और इस हैसियत से प्रशासनिक और कार्यालयीय प्रयोजनों की भाषा के रूप में भी उसका प्रयोग दिनों दिन बढ़ता जा रहा है। इस रूप में वह राजनीतिक दृष्टि से भी भारतीय एकता का मूल आधार बनी हुई है।

इस प्रकार अपनी लंबी ऐतिहासिक परंपरा, जनपदीय बोलियों से लगाव, प्रकृतिगत जीवंतता, विकासशीलता और आधुनिकता, जातीय अस्मिता के साथ-साथ सार्वदेशिकता आदि विशेषताओं के कारण हिन्दी का बहुत ही व्यापक रूप है, जो राष्ट्रीय स्तर पर ही नहीं अपितु अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी उसे गरिमा प्रदान करता है।

हिन्दी की उपर्युक्त विविधता और व्यापकता का यह अर्थ नहीं है कि उसका कोई मानक रूप नहीं है। बल्कि इस वैविध्य और व्यापकता को सँजोए हुए उसके मानक रूप का बहुत ही सुव्यवस्थित विकास हुआ है जिसका एक सुनिश्चित व्याकरण और अपनी शब्द-संपदा है। उसमें ध्वनि, उच्चारण, वर्तनी, पद, पदबंध, वाक्य-संरचना आदि भाषिक अवयवों के अपने नियम हैं। निश्चय ही यह उसका आदर्श रूप है। व्यवहार में इनका ध्यान रखना आवश्यक है। संप्रेषणीयता, बोधगम्यता और लोकमान्यता की दृष्टि से भाषा का मानक रूप आवश्यक होता है, तभी वह जीवन की वाणी बन पाती है।

भाषा की शुद्धता और अशुद्धता की परख मानक रूप के ही आधार पर की जाती है। अतः व्यवहार में हिन्दी के मानक रूप का ध्यान रखना हमारे लिए अत्यंत आवश्यक है।

मानक रूप का आशय भाषा की एकरूपता से नहीं है। देश, काल, पात्र, परिस्थिति और विषय के अनुसार मानक रूप की अनेक शैलियाँ मिलती हैं। कोई शैली आम बोलचाल की शब्दावली पर आधारित होती है तो कोई संस्कृतनिष्ठ शब्दावली पर। वैज्ञानिक, प्राविधिक, वाणिज्यिक

विषयों की शैली उनके अनुरूप ही प्रयुक्त होती है। प्रस्तुत संकलन में हम इन विविध शैलियों के उदाहरण भली-भाँति देख सकते हैं।

''मैं कौन'' (जैनेन्द्र) निबंध में आम बोलचाल की भाषा, शब्दावली और भंगिमा को देखिए :

''मुझ पर बहुतों की कृपा है, तब सोचता हूँ कि क्या करूँ, कहिए मैं आपकी क्या सेवा करूँ, ठंडाई मँगाऊँ।'' ''चोटी की बहस के मामले में मैं हारता हूँ।'' ''तब नरक में ही मुझे ठौर होगा'' आदि आम बोलचाल की शैली के ही उदाहरण हैं।

मुझ पर तरस ही नहीं किया, रोष ही किया। सामान्य रूप से 'तरस खाना', प्रयोग है, पर लेखक ने उसे बदल दिया है।

''मेरे यहाँ का जलपान उन्हें स्वीकार नहीं हुआ और वह मुझे तज कर चले गए।'' इस निबंध में स्थान-स्थान पर लोक भाषा का सहज स्नेहिल रूप मिलता है।

जैनेन्द्र जी ने नए शब्द भी गढ़े हैं – जो जैन नहीं वह अजैन है। इसी प्रकार असुधार्य, अभव्य, आशाशील आदि शब्द नए प्रयोग हैं।

अतः इन विशेषताओं को ध्यान में रखकर इस निबंध की शैली को अधिक अच्छी तरह समझा जा सकता है। ''नदी बहती रहे'' निबंध में तत्सम शब्दावली का प्रचुर प्रयोग मिलता है, जैसे – हमारा आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन समृद्ध हुआ है। जिस प्रकार वनों का वृक्षों से, नदियों का जल से अहिकुंडलिनी संबंध है, उसी प्रकार नदियों का वनों से कदंबकोरक संबंध मानना चाहिए। नदियाँ स्वतः फूट पड़ती हैं, हमारी संस्कृति विच्छिन्न हो जाएगी, जीवन स्रोत सूख जाएगा, आदि-आदि। इस निबंध में स्थान-स्थान पर भाव प्रधान शैली का प्रयोग भी मिलता है, यथा–''जब ऐसी महत्त्व की पुण्यतोया नदी का यह हाल हो रहा है तो औरों का क्या कहा जाए।'' ''इस देश की नदियाँ ही इसकी श्री रही हैं।'' ''ऐसी स्थिति में न कश्मीर ही स्वर्ग रह गया और न काशी ही तीन लोक से न्यारी रह गई। जब गंगा गंगा न रही, तब काशी की क्या स्थिति रहेगी।''

''अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न'' आत्माभिव्यंजक शैली में लिखा गया व्यंग्य-प्रधान निबंध है। भारतेन्दु हरिश्चंद्र के इस निबंध में अनेक स्थलों पर हिन्दी भाषा का प्रारंभिक रूप मिलता है। आज की मानक हिन्दी के

विकासक्रम को समझने की दृष्टि से इसके प्रारंभिक रूप को जानना आवश्यक है। कुछ उदाहरण देखिए, ''इस हेतु बहुत काल तक सोच-समझ प्रथम यह विचार'', ''फिर पड़े-पड़े पुस्तक रचने की सूझी।'', "परन्तु इस विचार में बड़े काँटे निकले, क्योंकि बनाने मे देर न होगी कि कीट क्रिटिक काट कर आधी से अधिक निगल जाएँगे।'', ''इस हेतु आप आतुर न हूजिए।'', ''किसी समय इस देश में इनकी बड़ी मानती थी।'' ऐसे अनेक प्रयोग इस निबंध में मिलेंगे। इन शब्दों, पदो तथा वाक्यो का चयन और उनका वर्तमान मानक रूप जानना हिन्दी शिक्षार्थियों के लिए विशेष उपयोगी बात होगी।

''भारत कोकिला'' संस्मरण है, जिसमें लेखक ने सरोजिनी नायडू के जीवन की कुछ घटनाओं का रोचक वर्णन करने के साथ-साथ उनके माध्यम से उनके स्वभाव और चरित्रगत विशेषताओं पर भी प्रकाश डाला है।

''उतरी स्वप्नपरी : हरित क्रांति'' (फणीश्वरनाथ 'रेणु') निबंध में विविध शैलियों का अद्भुत सम्मिश्रण है। एक ओर आंचलिक शब्दों का प्रयोग वहाँ के जनजीवन से प्रभावित हैं : जैसे,

''कोसी जिधर से गुजरती धरती बाँझ हो जाती।''

''सोना उपजाने वाली मिट्टी बालूचरों मे बदल जाती हैं।

''धरती का उदास और मनहूस बादामी रंग, सुबह शाम धूसर और वीरान।''

इसी प्रकार नहर, आहर, पैन-पुलिया आदि आंचलिक शब्दों का प्रयोग हम पाएँगे।

इनके द्वारा लेखक ने स्थानीय जन-जीवन के साथ आत्मीयता स्थापित की है।

इसी निबंध मे हम संस्कृतनिष्ठ शैली की बानगी भी पाते हैं। पुण्यसलिला, छिन्नमस्ता आदि प्रयोग हमें पौराणिक संदर्भों से जोड़ते है।

कागज़ पर रंग की लहरे लगाना, अमृत हास्य अंकित करना, आपके सुनहले स्वप्नों के अंडे कब फूटेंगे, सोने की चिड़िया कब चहचहाएगी, ज़िंदगी की बेल, दूधिया चमक, धरती का चप्पा-चप्पा हँस रहा है आदि प्रयोग काव्यात्मक शैली के अनूठे उदाहरण हैं, जो पाठक

की भावुकता को छूते चलते हैं।

इसी प्रकार हम अन्य निबंधों की भाषा और शब्दावली के आधार पर उनकी शैलीगत विशेषताओ को समझने का प्रयास करे तो इन निबंधो का अध्ययन सार्थक और उपयोगी सिद्ध होगा।

गांधी जी का जन्तर

तुम्हें एक जन्तर देता हूं । जब भी तुम्हें सन्देह हो या तुम्हारा अहम् तुम पर हावी होने लगे, तो यह कसौटी आजमाओ :

जो सबसे गरीब और कमजोर आदमी तुमने देखा हो, उसकी शकल याद करो और अपने दिल से पूछो कि जो कदम उठाने का तुम विचार कर रहे हो, वह उस आदमी के लिए कितना उपयोगी होगा । क्या उससे उसे कुछ लाभ पहुंचेगा ? क्या उससे वह अपने ही जीवन और भाग्य पर कुछ काबू रख सकेगा ? यानि क्या उससे उन करोड़ो लोगों को स्वराज्य मिल सकेगा जिनके पेट भूखे है और आत्मा अतृप्त है ?

तब तुम देखोगे कि तुम्हारा सन्देह मिट रहा है और अहम् समाप्त होता जा रहा है ।

विषय - सूची

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

(1850-85)

आधुनिक हिन्दी के निर्माता भारतेन्दु हरिश्चंद्र का जन्म वाराणसी में हुआ। 35 वर्ष की अल्पायु में इन्होंने साहित्य, समाज तथा संस्कृति के क्षेत्र में जो कार्य किया, उसे देखकर दाँतों तले अँगुली दबानी पड़ती है। इस अवधि में उन्होंने अनेक संस्थाएँ स्थापित और संचालित कीं, कई पत्रिकाओं का प्रकाशन किया, समाज-सुधार और शिक्षा-प्रचार के अनेक कार्य किए तथा हिन्दी के प्रचार के साथ-साथ गद्य और पद्य में गुण और परिमाण दोनों ही दृष्टियों से महत्त्वपूर्ण साहित्य की रचना की।

भारतेन्दु जी की प्रतिभा बहुमुखी थी। वे नाटककार थे, कवि थे, निबंधकार थे, पत्रकार थे, व्यंग्य लेखक थे, समालोचक थे और इतिहासकार थे। उनकी रचनाओं का प्रकाशन काशी नागरी प्रचारिणी सभा ने तीन खंडों में किया है। इनमें प्रमुख नाटक हैं : ''वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति'', ''चंद्रावली'', ''विषस्य विषमौषधम'', ''भारत दुर्दशा'', ''नील देवी'', ''अँधेर नगरी'' और ''सत्य हरिश्चंद्र''। उन्होंने ''कवि वचन सुधा'', ''हरिश्चंद्र मैगज़ीन'', ''हरिश्चंद्र चंद्रिका'' और ''बाला बोधिनी'' नामक पत्रिकाएँ भी निकालीं और एक लेखक मंडल तैयार किया।

भारतेन्दु जी केवल साहित्यकार नहीं, एक अच्छे व्यवस्थापक भी थे। देश की ग़रीबी, पराधीनता, शोषण, अशिक्षा आदि पर न केवल उन्होंने स्वयं लिखा, बल्कि अपने अनेक साथियों को लिखने के लिए प्रेरित किया और इस प्रकार वे भारतीय नवजागरण के अग्रदूत बने। उनकी सेवाओं का सम्मान करते हुए विद्वत् समाज ने उन्हें ''भारतेन्दु''

की उपाधि से अलंकृत किया।

भारतेन्दु ने अपने युग मे भाषा का एक नवीन निखरा हुआ रूप उपस्थित किया। विषयानुसारी भाषा-प्रयोग में दक्ष थे। गंभीर विषयों के प्रतिपादन में भाषा संस्कृत पदावली की ओर झुकने लगती है और इतिहास, यात्रा आदि विषयों पर लिखते समय व्यावहारिक हो जाती है। भावपूर्ण प्रसंगों में शैली मधुर और मार्मिक बन जाती है। भाषा पाठक के साथ रागात्मक संबंध स्थापित करने में समर्थ है। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा और अधिक सजीव हो गई है।

''अद्भुत अपूर्व स्वप्न'' भारतेन्दु जी का व्यंग्य प्रधान निबंध है। उन्होंने शिक्षक और शिक्षा को व्यवसाय बना देने वालों पर चोट की है। शिक्षकों के नामों से ही यह चोट व्यंजित हो जाती है। इस निबंध में हिन्दी गद्य के प्रारंभिक रूप के भी दर्शन होते हैं, जिसमें व्याकरण संबंधी शिथिलताएँ विद्यमान थी। ''सोते में सोचता हूँ कि इस चलायमान शरीर का कुछ ठीक नहीं'', ''ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ, जिसने हमारी ऐसी सुनी'' आदि। उनकी व्यंग्य शैली के भी दर्शन होते हैं। यथा ''हम अपने इष्ट मित्रों की सहायता को कभी न भूलेंगे कि जिनकी कृपा से इतना द्रव्य आया कि पाठशाला का सब खर्च चल गया और दस पाँच पीढ़ी तक हमारी संतान के लिये बच रहा''।

1. अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न

आज रात्रि को पर्यंक पर जाते ही अचानक आँख लग गई। सोते में सोचता हूँ कि इस चलायमान शरीर का कुछ ठीक नहीं। इस संसार में नाम स्थिर रहने की कोई युक्ति निकल आवे तो अच्छा है, क्योंकि यहाँ की रीति देख मुझे पूरा विश्वास होता है कि इस चपल जीवन का क्षण भर का भरोसा नहीं। ऐसा कहा भी है :

श्वाँस-श्वाॅस पर हरि भजो बृथा स्वाँस मति खोय ।
ना जानें या श्वाँस को आवन होय न होय ।।

देखो समय-सागर में एक दिन सब संसार अवश्य मग्न हो जाएगा। कालवश शशि-सूर्य भी नष्ट हो जाएँगे। आकाश में तारे भी कुछ काल पीछे दृष्टि न आवेंगे। केवल कीर्ति-कमल संसार सरोवर में भले ही रह जावे। और सब तो एक न एक दिन तप्त तवे की बूँद हुए बैठे हैं। इस हेतु बहुत काल तक सोच-समझ प्रथम यह विचारा कि कोई देवालय बना कर छोड़ जाऊँ,परंतु थोड़ी ही देर में समझ में आ गया कि इन दिनों की सभ्यता के अनुसार इससे बड़ी कोई मूर्खता नहीं और वह तो मुझे भली-भाॅति मालूम है कि यही अंग्रेज़ी शिक्षा रही तो मंदिर की ओर मुख फेरकर भी कोई न देखेगा। इस कारण इस विचार का परित्याग करना पड़ा। फिर पड़े-पड़े पुस्तक रचने की सूझी। परन्तु इस् विचार में बड़े काॅटे निकले, क्योंकि बनाने की देर न होगी कि कीट 'क्रिटिक' काट कर आधी से अधिक निगल जाएँगे। यश के स्थान, अपयश प्राप्त होगा। जब देखा कि अब्र टूटे-फूटे विचार से काम न चलेगा, तब लाड़ली नींद को दो रात पड़ोसियों घर भेज आँखें बंद कर शंभु की समाधि लगा गया। अंत में एक मित्र के बल से अति उत्तम बात की पूँछ हाथ में पड गई।

स्वप्न ही में प्रभात होते ही पाठशाला बनाने का विचार दृढ़ किया। परंतु जब बड़ी थैली में हाथ डाला, तो केवल ग्यारह गाड़ी ही मोहरें निकलीं। आप जानते हैं कि इतने में मेरी अपूर्व पाठशाला का एक कोना भी नही बन सकता था। निदान अपने इष्ट मित्रों की सहायता लेनी पड़ी। ईश्वर को कोटि धन्यवाद देता हूँ, जिसने हमारी ऐसी सुनी। यदि ईंटों की और मोहर चिनवा लेते तब भी तो दस-पॉच रेल रुपये और खर्च पड़ते। होते-होते सब हरि-कृपा से बन कर ठीक हुआ। इसमें जितना समस्त व्यय हुआ वह तो मुझे स्मरण नहीं है, परतु इतना अपने मुंशी से मैंने सुना था कि एक का अंक और तीन सौ सत्तासी शून्य अकेले पानी में पड़े थे। बनने को तो एक क्षण में सब बन गया था, परंतु उसके काम जोड़ने में पूरे पैंतीस वर्ष लगे। जब हमारी अपूर्व पाठशाला बन कर ठीक हुई, उसी दिन हमने हिमालय की कंदराओं में से खोज-खोजकर अनेक उद्‌दंड पंडित बुलवाए। इस पाठशाला में अगणित अध्यापक नियत किए गए। परंतु मुख्य केवल ये हैं— पंडित मुग्धमणि शास्त्री तर्कवाचस्पति, प्रथम अध्यापक। पाखंड-प्रिय धर्माधिकारी, अध्यापक धर्मशास्त्र। प्राणांतक प्रसाद वैद्यराज, अध्यापक वैद्यकशास्त्र। लुप्त-लोचन ज्योतिषाभरण, अध्यापक ज्योतिषशास्त्र। शीलदावानल नीतिदर्पण, अध्यापक आत्मविद्या।

इन पूर्वोक्त पंडितों के आ जाने पर अर्धरात्रि गए पाठशाला खोलने बैठे। उस समय सब इष्ट-मित्रों के सम्मुख उस परमेश्वर को कोटि धन्यवाद दिया, जो संसार को बना कर क्षण भर में नष्ट कर देता है और जिसने विद्या, शील, बल के सिवाय मान, मूर्खता, परद्रोह, परनिंदा आदि परम गुणों से इस संसार को विभूषित किया है। हम कोटि धन्यवादपूर्वक आज इस सभा के सम्मुख अपने स्वार्थरत चित्त की प्रशंसा करते हैं, जिनके प्रभाव से ऐसे उत्तम विद्यालय की नींव पड़ी। उस ईश्वर को ही अंगीकार था कि हमारा इस पृथ्वी पर कुछ नाम रहे, नहीं तो जब द्रव्य की खोज में समुद्र में डूबते-डूबते बचे थे तब कौन जानता था कि हमारी कपोल-कल्पना सत्य हो जाएगी। परंतु ईश्वर के अनुग्रह से हमारे सब संकट दूर हुए और अंत समय हमारी अभिलाषा पूर्ण हुई। हम अपने इष्ट-मित्रों की सहायता को कभी न भूलेंगे कि जिनकी कृपा से इतना द्रव्य आया कि पाठशाला का सब खर्च चल गया और दस-पॉच पीढ़ी तक

हमारी संतान के लिए बच रहा। हमारे पुत्र-परिवार के लोग चैन से हाथ पर हाथ धरे बैठे रहें। हे सज्जनो, यह तुम्हारी कृपा का विस्तार है कि तन-मन से आप इस धर्मकार्य में प्रवृत्त हुए,नहीं तो मैं दो हाथ-पैर वाला बेचारा मनुष्य कैसे ऐसे दुष्कर कर्म को कर लेता, यहाँ तो केवल घर की मूँछें ही मूँछें थीं। कुछ मेड़, कुछ गंगाजल, काम आपकी कृपा से भली-भाँति हो गया। मैं आज के दिन को नित्य का प्रथम दिन मानता हूँ जो औरों को अनेक साधन से भी मिलना दुर्लभ है। धन्य है उस परमात्मा को जिसने आज हमारे यश के डहडहे अंकुर फिर हरे किए हैं। हे सुजन शुभचिंतको ! संसार में पाठशाला अनेक हुई होंगी, परंतु हरि कृपा से जो आप लोगों की सकल-पूर्ण कामधेनु यह पाठशाला है वैसी अचरज नहीं कि आपने इस जन्म में न देखी हो। होनहार बलवान है, नहीं तो कलिकाल में ऐसी पाठशाला का बनाना कठिन था। देखिए यह हम लोगों के भाग्य का उदय है कि ये महामुनि मुग्धमणि शास्त्री बिना प्रयास हाथ लग गए, जिनको सतयुग के आदि में इंद्र अपनी पाठशाला के निमित्त समुद्र और वन-जंगलों में खोजता फिरा, अंत में हार मान बृहस्पति को रखना पड़ा। हम फिर भी कहते हैं कि यह हमारे भाग्य ही की महिमा थी कि वे ही पंडितराज मृगयाशील श्वान के मुख से शश के धोखे बद्रिकाश्रम की एक कंदरा में पड़ गए। इनकी बुद्धि और विद्या की प्रशंसा करते दिन में सरस्वती भी लजाती है। इसमें संदेह नही कि इनके थोड़े ही परिश्रम से पंडित मूर्ख और अबोध पंडित हो जाएँगे। हे मित्र ! मेरे निकट जो महाशय बैठे हैं इनका नाम पंडित पाखंड प्रिय है। किसी समय इस मेरे देश में इनकी बड़ी मानता थी। सब स्त्री-पुरुषों को इन्होंने मोह रखा था। परंतु अब कालचक्र के मारे अंग्रेज़ी पढ़े हिन्दुस्तानियों ने इनकी बड़ी दुर्दशा की। इस कारण प्राण बचा कर हिमालय की तराई में हरित दूर्वा पर संतोष कर अपना कालक्षेप करते थे। विपत्ति ईश्वर किसी पर न डाले। जब तक इनका राज था दृष्टि बचाकर भोग लगाया करते थे। कहाँ अब श्वान, शृगाल के संग दिन काटने पड़े, परंतु फिर भी इनकी बुद्धि पर पूरा विश्वास है कि एक कार्तिक मास भी इनको लोग स्थित रह जाने देंगे तो हरिकृपा से समस्त नवीन धर्मों पर चार-पाँच दिन में पानी फेर देंगे।

इनसे भिन्न पंडित प्राणांतक प्रसाद भी प्रशंसनीय पुरुष हैं। जब तक

इस घट में प्राण है तब तक न किसी पर इनकी प्रशंसा बन पड़ी, न बन पड़ेगी। ये महावैद्य के नाम से इस समस्त संसार में विख्यात हैं। चिकित्सा में ऐसे कुशल हैं कि चिता पर चढ़ते-चढ़ते रोगी इनके उपकार का गुण नहीं भूलता। कितना ही रोग से पीड़ित क्यों न हो,क्षण भर में स्वर्ग के सुख को प्राप्त होता है। जब तक औषधि नहीं देते केवल उसी समय तक प्राणी को संसारी व्यथा लगी रहती है। आप लोग कुछ काल की अपेक्षा कीजिए, इनकी चिकित्सा और चतुराई अपने आप प्रकट हो जाएगी। यद्यपि आपके अमूल्य समय में बाधा हुई, परंतु यह भी स्वदेश की भलाई का काम था, इस हेतु आप आतुर न हूजिए और शेष अध्यापकों की अमृतमय जीवन कहानी श्रवण कीजिए।

ये लुप्तलोचन ज्योतिषाभरण बड़े उद्दंड पंडित हैं। ज्योतिष विद्या में अति कुशल हैं, कुछ नवीन तारे भी गगन में जाकर ये ढूँढ़ आए हैं और कितने ही नवीन ग्रंथों की भी रचना कर डाली है। उनमें 'तामिस्रमकरालय' प्रसिद्ध और प्रशंसनीय है। यद्यपि इनको विशेष दृष्टि नहीं आती, परंतु तारे इनकी ऑखों में भली-भाँति बैठ गए हैं।

रहे पंडित शीलदावानल नीतिदर्पण ! इनके गुण अपार हैं। समय थोड़ा है, इस हेतु थोड़ा-सा आप लोगों के आगे इनका वर्णन किया जाता है। ये महाशय बालब्रह्मचारी हैं। अपने आयु भर नीतिशास्त्र पढ़ते-पढ़ाते रहे हैं। इनसे नीति तो बहुत से महात्माओं ने पढ़ी थी, परंतु वेणु, बाणासुर, रावण, दुर्योधन, शिशुपाल, कंस आदि इनके मुख्य शिष्य थे और अब भी कोई कठिन काम आकर पड़ता है तो अंग्रेज़ी न्यायकर्ता भी इनकी अनुमति लेकर आगे बढ़ते हैं। हम अपने भाग्य की कहाँ तक सराहना करें। ऐसा तो संयोग इस संसार में परम दुर्लभ है। अब आप सब सज्जनों से यही प्रार्थना है कि आप अपने-अपने लड़कों को भेजें और व्यय आदि की कुछ चिंता न करें क्योंकि प्रथम तो हम किसी अध्यापक को मासिक देंगे नहीं और दिया भी तो अभी दस-पाँच वर्ष पीछे देखा जाएगा। यदि हमको भोजन की श्रद्धा हुई तो भोजन का बंधान बाँध देंगे, नही तो यह नियत कर देगे कि जो पाठशाला संबंधी द्रव्य हो उसको वे सब मिलकर बॉट लिया करे। स्त्री शिक्षा का जो विचार था, वह आज रात को हम घर पूछ लें तब कहेंगे।

अब जिस किसी को हमारी पाठशाला में पढ़ना अंगीकार हो, यह

समाचार सुनने के प्रथम, तार में खबर दें। नाम उनका किताब में लिख लेंगे, पढ़ने जाओ चाहे मत जाओ।

प्रश्न-अभ्यास

1. प्रस्तुत निबंध का मुख्य प्रयोजन क्या है ? दिए गए विकल्पो में से कीजिए:
   (क) एक उत्तम पाठशाला की विशेषताओं का वर्णन।
   (ख) शिक्षा को व्यवसाय माननेवालों पर चोट।
   (ग) लेखक द्वारा संसार में अपनी यश-स्थापना की कामना-पूर्ति।
   (घ) अंग्रेजी शिक्षा के कारण धार्मिक श्रद्धा-विश्वास के ह्रास पर लेखक की चिंता।
   (ङ) समालोचकों की प्रवृत्ति पर व्यंग्य।
2. लेखक के मन मे आए अन्य विचारों को छोड़ पाठशाला बनाने के विचार को ही क्यों पसंद किया?
3. पाठशाला मे नियुक्त अध्यापकों के कार्यक्षेत्र के आधार पर उनके नामों की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
4. पाठ के कुछ व्यंग्य कथनों को चुनकर उनके आधार पर सिद्ध कीजिए कि यह व्यंग्य-प्रधान निबंध है।
5. आधुनिक हिन्दी और इस निबंध में प्रयुक्त हिन्दी के अंतर को शब्द-रूपों और वाक्य-विन्यासों की दृष्टि से सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
6. निम्नांकित कथनों के आशय संदर्भ सहित स्पष्ट कीजिए :
   (क) परतु इस विचार में बड़े काँटे निकले, क्योंकि बनाने की देर न होगी कि कीट क्रिटिक आधी से अधिक निगल जाएँगे।
   (ख) अब कालचक्र के मारे अंग्रेजी पढ़े हिन्दुस्तानियों ने इनकी बड़ी दुर्दशा की। इस कारण प्राण बचाकर हिमालय की तराई में हरित दूर्वा पर संतोष कर अपना काल क्षेप करते थे।
   (ग) आप लोग कुछ काल की अपेक्षा कीजिए, इनकी चिकित्सा और चतुराई अपने आप प्रकट हो जाएगी।
   (घ) इनसे तो नीति तो बहुत महात्माओं ने पढ़ी थी, किन्तु वेणु, बाणासुर, रावण, दुर्योधन, शिशुपाल, कंस आदि इनके मुख्य शिष्य थे।
7. अद्भुत अपूर्व स्वप्न शीर्षक के औचित्य पर सोदाहरण अपने विचार प्रकट कीजिए।

जैनेंद्र कुमार

(1905-88)

जैनेंद्र का जन्म अलीगढ़ जिले के कौड़ियागंज में हुआ था। उन्होंने मैट्रिक तक की शिक्षा हस्तिनापुर के जैन गुरुकुल मे प्राप्त की। उसके बाद उच्च शिक्षा के लिए उन्होंने काशी हिंदू विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया, किंतु गांधी जी के आह्वान पर वे अध्ययन छोड़कर असहयोग आंदोलन में शामिल हो गए। वे गांधी जी के जीवन-दर्शन से अत्यधिक प्रभावित हुए, जिसकी झलक उनकी रचनाओ में भी पाई जाती है।

जैनेंद्र जी हिन्दी साहित्य में अपने कथा-साहित्य के कारण प्रसिद्ध हैं। 'एक रात', 'वातायन', 'दो चिड़ियाँ', 'नीलम देश की राजकन्या' आदि उनके प्रसिद्ध कहानी संग्रह हैं। 'सुनीता', 'कल्याणी', 'त्यागपत्र', 'परख', 'जयवर्धन' आदि उनके प्रसिद्ध उपन्यास हैं।

कथा-साहित्य के साथ-साथ जैनेंद्र ने अनेक उत्कृष्ट निबंधों की रचना की है। 'जैनेंद्र के विचार', ''प्रस्तुत प्रश्न', 'संस्मरण', 'समय और हम', 'इतस्ततः' आदि रचनाओं में जीवन की विविध समस्याओं पर विचारो और मनोवैज्ञानिक विश्लेषण में उनकी मौलिकता के दर्शन होते हैं।

जैनेंद्र जी को उनके 'मुक्तिबोध' उपन्यास पर साहित्य अकादमी ने पुरस्कृत किया। उनकी साहित्यिक सेवाओं के लिए उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने 1984 ई. में उन्हें ''भारत-भारती'' पुरस्कार द्वारा सम्मानित किया।

प्रस्तुत निबंध ''मैं कौन'' जैनेंद्र जी का विचारात्मक निबंध है जो 'परिप्रेक्ष्य' नामक रचना-संग्रह से लिया गया है। इसमें लेखक ने रोचक कथात्मक शैली द्वारा यह दिखाया है कि मनुष्य विभिन्न धर्मों और

संप्रदायो के बाह्य विधि-विधानों से बँधा हुआ नहीं है और इनसे परे रह कर सहज, स्वाभाविक मनुष्य के रूप मे जीवन बिता सकता है। सनातनधर्मी, जैन धर्मी, आर्यसमाजी, मुस्लिम, ईसाई आदि धर्मावलंबियों से लेखक की बातचीत और उन सभी के प्रति विनम्रता और सदाशयता के भाव ने निबंध को मर्मस्पर्शी और विचारोत्तेजक बना दिया है।

2. मैं कौन ?

मुझ पर बहुतों की कृपा है। इसके लिए मैं परमात्मा का और उन सबका कृतज्ञ हूँ। पर उन सबको संतुष्ट कर पाऊँ ऐसा मुझसे नहीं बनता। तब सोचता हूँ कि क्या करूँ? हितैषियों की कृपा और सद्भाव से वंचित मैं अपने को नहीं बनाना चाहता। लेकिन अगर मैं आज्ञा का मान रखने में असमर्थ सिद्ध होता हूँ तो क्या आशा करूँ कि उनसे असहमत रहूँ फिर भी वे मुझ पर कृपालु रहेगे ?

काम के लिए मेज पर बैठा ही था कि एक सज्जन आए। कई बार सभाओं में उन्हें देखा था। अच्छे वक्ता थे, स्थानीय सनातन धर्म संस्था के स्तंभ थे। पर मेरा उनका यह परिचय नवीन था।

उन्होंने कहा – उस दिन मैंने आपका भाषण सुना था। सोचा, मैं आपसे मिल लूँगा। आप तो सनातन धर्म के सिद्धांतों को मानने वाले मालूम होते हैं। फिर शिखासूत्र क्यों धारण नहीं करते ?

मैने कहा-क्या इसी के लिए आपने कष्ट उठाया है? इस समय मेरे शिखा सूत्र नहीं हैं, यह जानता हूँ। किंतु इस कारण अच्छा बनने में मुझमें कुछ अक्षमता रहती है, ऐसा भी बोध मुझे नहीं है। लेकिन, कहिए मैं आपकी क्या सेवा करूँ? ठंडाई मँगाऊँ?

बोले-भारतवर्ष में हिन्दू हैं अथवा अहिन्दू हैं। व्यक्ति को तय कर लेना होगा कि वह क्या है। शिखासूत्र उनके बीच की रेखा है। आप उससे उदासीन नहीं रह सकते।

किन्तु मुझमें तत्संबंधी विशेष जागृति नहीं हुई। मैंने चाहा कि बताइए मेरे लिए क्या आज्ञा है। सेवा के लिए मैं प्रस्तुत हूँ। चोटी की बहस के मामले में मैं हारता हूँ। क्या यह संभव हो सकेगा कि वह मुझे अपने अनुसार ही रहने देंगे?

पर उनका भी मत स्पष्ट था। बिना शिखासूत्र मैं भ्रष्ट रहूँगा,

म्लेच्छ रहूँगा। तब नरक में ही मुझे ठौर होगा और वह मेरे संबंध में आशाशील हैं, मुझ पर स्नेह रखते हैं। कैसे वे अपनी आँखों के सामने यह सहन करें कि मैं नरक के योग्य रहूँ? उनके प्रेम का तकाजा है कि वह मेरा उद्धार करें।

अब क्या उनकी चिंता और प्रेम के लिए मैं उनका ऋणी न बनूँ? किंतु करूँ क्या? मैंने कहा—महाराज, क्या और कुछ मेरे लिए सेवा का आदेश नहीं दे सकते जो मुझसे हो सके?

वह अत्यंत निस्वार्थ सज्जन थे। मेरा उपकार ही चाहते थे। पैसा उन्हें दरकार न था, मेरी श्रद्धा उन पर अटूट थी। पर अपने से इनकार कर दूँ इतना असत्य मुझसे न हो सका और प्रस्तुत विषय के संबंध में मैंने उनसे यही चाहा कि वह मुझ पर ही छोड़ दें।

मैंने अंत में पाया कि वह रुष्ट हो गए हैं। मेरे यहाँ का जलपान उन्हें स्वीकार न हुआ और वह मुझे तज कर चले गए।

मैं अपने काम में लगने को झुका—

कुछ देर बाद एक और महाशय आए। बातचीत आरंभ करके बोले—तो क्या आप आर्यसमाजी नहीं हैं?

मैंने कहा— हूँ तो नहीं, पर कहिए।

कहने लगे — बड़े खेद की बात है।

मैंने माना खेद की बात हो सकती है। पर मुझसे क्या और कोई सेवा लेने की आज्ञा वह कृपया मुझे नहीं देंगे ? पर वे सबसे पहले यह चाहते थे कि बहस करके मैं उन्हें बतला सकूँ कि समझदार होकर मैं किस प्रकार आर्यसमाजी होने से बच सकता हूँ। हाँ, उन्होंने कहा, जिद का इलाज उनके पास नहीं है। पर यह निश्चय है, यदि आर्यधर्मी मैं नहीं बन सकता हूँ, तो अब से मेरी समझदारी पर उन्हें शंका होगी।

मेरे लिए अपनी समझदारी पर अहंकार का मौका नहीं है। पर अपनी अज्ञानता को जानकर भी अपने ही प्रति विरुद्ध और विरुद्धाचारी बनूँ इतना दंभ मुझमें नहीं है।

आर्यसमाज धर्म कल्याणकर है। सत्य है और जो कुछ भी वह कह सकें सब है। उनके वक्तव्य में मेरे लिए आपत्ति का तनिक भी अवकाश नहीं है। पर अपनी असमर्थता का मैं क्या बना सकता हूँ। निवेदन करने को मेरे पास अपनी लाचारी ही थी और मैंने कहा — एक कम

आर्यसमाजी भी रहा तो कितना दुनिया का नुकसान होगा, क्योंकि वह बहुत नहीं है, इसलिए वह उसे सह लें।

पर उन्होंने भी मुझ पर तरस नहीं किया, रोष ही किया, और जब मेरे संबंध में निरे निराश होकर वह चले गए,तब मैं भी तनिक खिन्न हुआ और मेज पर झुका कि–

एक जैन विद्वान् की कृपा-दृष्टि इन दिनों मुझ पर आ गई थी। कुछ देर बाद वे पधारे। उन्हें भरोसा था कि मैं जैन हूँ और अभव्य नही हूँ। वह चाहते थे कि जैनत्व मे प्रगाढ़ता प्राप्त करूँ।

किन्तु यही उनका मन्तव्य था। जैन धर्म ही तो धर्म है और मुझे उसे धारण रखना होगा और गौरव के साथ प्रकट करते रहना होगा कि मैं जैन हूँ।

मैंने जानना चाहा कि अगर वैसा करने में अशक्त होऊँ तो फिर उनके पास मेरे लिए कहाँ जगह है? उन्होंने बताया कि जो जैन नहीं वह अजैन है, अर्थात् मिथ्यात्वी है। जब तक वह नर तन में है,तब तक वह उसे कलंकित करता है। इस योनि से छूटकर फिर उसे नरक अथवा तिर्यग् योनि में ही स्थान मिलेगा।

नरक में जाने से अथवा तिर्यग् योनि से डरकर, क्या मैं आज अपने साथ झूठा आचरण करूँ? मैंने यही पंडित जी से कहा, नरक आएगा तो झूठ बोल कर उससे मैं अपने को कैसे बचा लूँ? यह कहकर इस बारे में मैंने उनसे क्षमा चाही।

किन्तु उन्हें मेरा अपकार किसी प्रकार स्वीकार न था। मानव देह पाकर मैं उसे जैन धर्म के अमृत से वंचित रखूँ,यह पंडित जी कभी न होने देंगे। प्रेम की ताक़त के अधिकार को भी वह क्यों न मेरे ऊपर बरतें और मुझे सन्मार्ग पर लावें ? मैंने चाहा कि वे अवश्य ऐसा करें, किंतु निवेदन किया कि यदि मैं अंत तक असुधार्य ही रहा तो अपना स्नेह वह मुझ पर से उठा न लें।

चर्चा खासी देर तक चली पर अपने भाग्य को क्या करूँ। वह बेहद गरम होकर गए।

मैं फिर मेज पर झुका–

उस दिन जान पड़ता है काम होना ही न था। उसी रोज एक मुसलमान मेहरबान भी आए, ईसाई पिता भी आ गए। मैं भोजन के

समय को लाँघकर उनके साथ ही बैठा रहा। उन सबकी शुभाकांक्षा का मूल्य जानता हूँ। उनकी कृपा को भी अपने बस कभी नहीं खो सकता। मैंने उनको कहा कि वे मेरे पूज्य हैं, मेरे प्रति अपने में वे क्षमा भाव शेष रहने दें। यदि उनकी आज्ञा को ज्यों-की-त्यों पालने में असमर्थ हूँ तो भी उनका ऋणी हूँ। उनके वक्तव्यों में मुझे आपत्ति की अथवा आलोचना की गुंजाइश नहीं है। न समझें, मैं मुसलमान होने का या ईसाई होने का कायल नहीं हूँ। पर कुछ कहलाया ही जाऊँ और वही कहलाया जाऊँ, इसका आकर्षण मुझे नहीं है। पर इस कारण मुझे वह अपने से दूर बिल्कुल न मान लें।

पर वे लोग भी अतिशय अप्रसन्न होकर ही यहाँ से गए और मैं फिर –

अभी वे सब गए हैं। मैं नहीं जानता कि क्या मुझे हक़ है कि मैं उन सबकी सत्-अभिलाषाओं को वापस कर दूँ। लेकिन, क्या करूँ? खैर अब बारह बज गए हैं, मुझे इजाज़त दीजिए कि मैं ज़रा स्वस्थ हो लूँ।

प्रश्न-अभ्यास

1. किसी भी मतावलंबी की बात लेखक स्वीकार नहीं करता। इससे लेखक की निम्नलिखित में से कौन-सी मनोवृत्ति प्रकट होती है :
   (क) धार्मिक मतों के प्रति अविश्वास
   (ख) अहंकार
   (ग) असमर्थता
   (घ) हठधर्मिता
   (ङ) मानवतावादी विचारधारा।
2. क्या मनुष्य के लिए किसी धर्म के बाह्य विधि-विधानों को अपनाना आवश्यक है? इस पाठ के आधार पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
3. सनातनधर्मी तथा आर्यसमाजी सज्जनों ने क्या-क्या तर्क देकर लेखक को प्रभावित करना चाहा?
4. "मुझ पर बहुतों की कृपा है।" यह मानते हुए भी लेखक विभिन्न लोगों का कृपापात्र क्यों नहीं बन पाया ?
5. यह निबंध विचार-प्रधान निबंध की कसौटी पर कहाँ तक खरा उतरता है ?

6. इस निबंध में सामान्य प्रचलित भाषा से हटकर कुछ नए प्रयोग किए गए हैं, जैसे–''जो जैन नहीं वह अजैन है'' या ''गुझ पर तरस नहीं किया''। इस तरह के प्रयोगों का चयन कीजिए और उनका मानक रूप लिखिए।
7. जैनेंद्र जी के वाक्य-विन्यास की किन्हीं दो विशेषताओं का सोदाहरण उल्लेख कीजिए।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

(1908-74)

रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म बिहार राज्य के मुंगेर जिले के सिमरिया ग्राम में हुआ था। प्रतिष्ठा (आनर्स) के साथ बी.ए. करने के बाद उन्होंने कुछ दिनों के लिए एक उच्च विद्यालय में प्रधानाध्यापक के पद पर कार्य किया। उसके बाद वे प्रचार विभाग में अवर-निबंधक और उपनिदेशक के पदों पर स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद तक कार्यरत रहे। कुछ समय तक वे बिहार विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष भी रहे। 1952 ई. में वे भारतीय संसद के सदस्य निर्वाचित हुए। कुछ समय भागलपुर विश्वविद्यालय के उप-कुलपति भी रहे। भारत सरकार के हिन्दी सलाहकार के रूप में एक लंबे अरसे तक हिन्दी के संवर्धन एवं प्रचार-प्रसार के लिए कार्य करते रहे। 'संस्कृति के चार अध्याय' नामक पुस्तक पर साहित्य अकादमी पुरस्कार और 'उर्वशी' पर उनको ज्ञानपीठ पुरस्कार मिला। भारत सरकार ने उन्हें 'पद्मभूषण' से सम्मानित किया।

'दिनकर' की प्रसिद्धि का मुख्य आधार उनका काव्य है और वे देश-विदेश में मुख्यतया कवि-रूप में ही प्रसिद्ध हैं। लेकिन वे गद्य -लेखन में भी अप्रतिम रहे और अनेक अनमोल ग्रंथ लिख कर उन्होंने हिन्दी साहित्य की श्रीवृद्धि की। उनके गद्य में विषयों की विविधता और शैली की प्रांजलता के दर्शन सर्वत्र होते हैं। उनका गद्य काव्य की भाँति ही अत्यंत सजीव एवं स्फूर्तिमय है। उन्होंने काव्य, संस्कृति, सामाजिक जीवन आदि विषयों पर बहुत ही मर्मस्पर्शी लेख लिखे हैं। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं :

काव्य कृतियाँ : 'रेणुका', 'हुंकार', 'रसवंती', 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'सामधेनी', 'उर्वशी', 'परशुराम की प्रतीक्षा', 'हारे को हरिनाम' आदि।

गद्य कृतियाँ : 'संस्कृति के चार अध्याय', 'मिट्टी की ओर', 'शुद्ध कविता की खोज', 'साहित्य मुखी', 'काव्य की भूमिका', 'अर्द्धनारीश्वर', 'उजली आग', 'देश-विदेश' आदि।

इस पाठ में लेखक ने बड़े ही मर्मस्पर्शी रूप में युधिष्ठिर के अनुताप का वर्णन किया है। विजयी होने पर भी हस्तिनापुर का हृदय विदारक दृश्य उनसे देखा नहीं जाता। इसी संदर्भ में लेखक युद्ध और हिंसा की भर्त्सना करता है और हिंसा को धर्म तथा संस्कृति के विनाश का कारण भी घोषित करता है।

3. विजयी के आँसू

(महाभारत के अनंतर महाराज युधिष्ठिर के परिताप की कल्पना)

कुरुक्षेत्र का युद्ध समाप्त हो गया। लड़ाई के पहले वीरों की श्रेणी में जो भी गिने जाने के योग्य थे, वे प्रायः सब-के-सब युद्धभूमि में सो गए। जिस भूखंड पर कौरवों और पांडवों की मुठभेड़ हुई थी, वह आज लहू से लथपथ और रुंड-मुंडों से भयानक हो उठा है। भयानकता के बीच केवल भीष्म हैं जो शरशय्या पर जाग रहे हैं।

अठारह अक्षौहिणी सेना की लाशों पर से रथ दौड़ाता हुआ मैं हस्तिनापुर की राजधानी में आ गया हूँ, किंतु यह राजधानी वही नहीं है जिसमे दुर्योधन अपने भाइयों और मित्रों के साथ निवास करता था अथवा जहाँ हमने भी आनंद के कुछ वर्ष बिताए थे। फूल सूख गए, हरियाली जल कर खाक हो गई, शाखाएँ और टहनियाँ खंड-खंड होकर नीचे पड़ी हैं और पत्तों का कहीं पता भी नहीं है। जो शेष है वह वाटिका नही, वाटिका का कंकाल है और यही कंकाल, उपवन की यही ठठरी, मेरे भाग्य में बदी थी जो विजय के हाथों मुझे पुरस्कार में मिली है।

जब भीम की गदा की चोट खाकर नर-व्याघ्र दुर्योधन धराशायी हुआ, उसने मूर्च्छित होते-होते ललकार कर मुझसे कहा था, 'युधिष्ठिर ! वीरों को लेकर तो मैं स्वर्ग चला, अब विधवाओं को लेकर तुम राज करो'। दुर्योधन की इस उक्ति की वेधकता उस समय मुझ पर प्रकट नही हुई थी। हम सबने सोचा था कि निराशा के अतिरेक से व्याकुल होकर दुर्योधन व्यंग्यवाण का सहारा ले रहा है, किन्तु आज मुझे स्पष्ट दीख रहा है कि उसने तनिक भी अत्युक्ति नहीं की थी। सचमुच ही भारत के सभी शूरमा विदा हो गए, जो विदा होने से बचकर पीछे रह गया है वह विधवाओं और निपूती माताओं का देश है। और यही वह देश है जिस

पर विजेताओं को राज करना है।

आज हस्तिनापुर की छत पर चढ़कर जब मैंने चारों ओर दृष्टि डाली, तब ऐसा लगा, मानो मैं किसी महाश्मशान में खड़ा हूँ। जिसकी कुरूप शांति मन में काँटे चुभोती है और जिसका भीषण सुनसान दूर से भी भयानक लगता है। और इस सुनसान में मरघट की शांति के भीतर से एक आवाज़ उठती है जो मुझसे पूछना चाहती है कि युधिष्ठिर ! क्या तुम इसी शांति के लिए लड़ाई लड़ने नहीं गए थे? मेरे अपने ही कर्म व्यंग्य बनकर मुझ पर लोट रहे हैं। मेरी अपनी ही इच्छा और आकांक्षा तीर बन कर मुझे विदीर्ण कर-रही है। ऐसा लगता है कि मैंने जो कुछ सोचा, सब गलत था, जो कुछ किया, सब दुष्कर्म था। शकुनि के साथ जुए की बाजी हार कर भी मन से मै हारा नहीं था, किंतु आज तो इतनी बड़ी लड़ाई जीतकर भी अनुभव होता है कि मै सब कुछ हार चुका हूँ और पराजय की इस व्यथा का कोई निराकरण भी है, इसकी थोड़ी भी आशा नहीं दीखती।

हस्तिनापुर में आज ऐसा कोई घर नहीं जिसमें बच्चों की किलकारियों की गूँज हो, जिसमें युवतियाँ हर्ष और उल्लास के गीत गाती हों और युवक आनंद के अट्टहास उठा रहे हों। राजधानी में अगर कोई आवाज सुनाई देती है तो वह चूड़ियों के टूटने की आवाज़ है, वह बिलख-बिलखकर रोने वाली निपूती माताओं की आवाज़ है, वह सिर और छाती पीटकर चीखती हुई बहनों और विधवा पत्नियों की आवाज़ है।

और जो हाल राजधानी का है, वही सारे देश का। अभी तक जहाँ-जहाँ से समाचार आए हैं, उनसे तो यही ज्ञात होता है कि देश में शायद ही ऐसा कोई घर हो, जिसके दो-एक लाल इस महासंग्राम में बलि नहीं हुए हों। युद्ध के नाग ने प्रत्येक परिवार को डसा है। महानाश की चिनगारी हर एक छप्पर पर पड़ी है। हर एक घर से शोक का धुआँ उठ रहा है।

भारतवर्ष को अपने महारथियों का बड़ा अभिमान था और आज से बीस-बाईस दिन पूर्व तक इस देश में जितने महारथी एक साथ विद्यमान थे, उतने तो इतिहास में और कभी, कदाचित् ही, वर्तमान रहे होंगे। भीष्म, द्रोण और अश्वत्थामा, कर्ण, दुर्योधन और जयद्रथ तथा

कृपाचार्य, कृतवर्मा, शल्य और भूरिश्रवा, सात्यकि, उत्तमौजा और युधामन्यु, द्रुपद, विराट, धृष्टद्युम्न और चेकितान तथा घटोत्कच और कुंतिभोज— इनके जोड़ के अतिरथी अब आगे शायद ही उत्पन्न हों। किंतु काल ने किसी को भी नहीं छोड़ा। सब युद्ध में उतरे और सब-के-सब उसी में विलीन हो गए। विधि-संयोग से युद्ध ने जिन्हें निगलने से इनकार कर दिया, उनमें पांडव-पक्ष के सात्यकि और श्रीकृष्ण तथा कौरव-पक्ष के कृतवर्मा, कृपाचार्य और अश्वत्थामा—ये पाँच ही वीर शेष हैं।

जब तक युद्ध चल रहा था, हम संग्राम की मादकता में विभोर थे और हमें यह सोचने का अवकाश ही नहीं था कि हम क्या कर रहे हैं। किंतु युद्ध के समाप्त होते ही यह स्पष्ट हो गया है कि हम जिस कर्म में इतने उत्साह से लगे हुए थे, वह असल में अत्यंत गर्हित कर्म था और उसे धर्म का विशेषण देना धर्म का नितांत अपमान करना है।

यह सत्य है कि दोनों पक्षों के वीर इस युद्ध को धर्मयुद्ध मान कर लड़ रहे थे, किंतु धर्म पर दोनों में से कोई भी अडिग नहीं रह सका। 'लक्ष्य प्राप्त हो चाहे न हो, किंतु हम कुमार्ग पर पाँव नही रखेंगे' इस निष्ठा की अवहेलना दोनों ओर से हुई और दोनों पक्षों के सामने साध्य प्रमुख और साधन गौण हो गया। प्यारे अभिमन्यु की हत्या पाप से की गई तो भीष्म, द्रोण, भूरिश्रवा और स्वयं दुर्योधन का वध भी पुण्य से नहीं हुआ। जिस युद्ध में भीष्म, द्रोण और श्रीकृष्ण वर्तमान हों, उस युद्ध में भी धर्म का पालन नहीं हो सके, इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि युद्ध कभी भी धर्म के पथ पर रहकर लड़ा नहीं जा सकता। हिंसा का आदि भी अधर्म है, मध्य भी अधर्म है और अंत भी अधर्म है। जिसकी आँखों पर लोभ की पट्टी नही बँधी है, जो क्रोध, आवेश अथवा स्वार्थ में जाकर अपने कर्तव्य को भूल नहीं गया है, जिसकी आँख साधना की अनिवार्यता से हटकर साध्य पर ही केंद्रित नहीं हो गई है, वह युद्ध जैसे मलिन कर्म में कभी भी प्रवृत्त नहीं होगा। युद्ध में प्रवृत्त होना ही इस बात का प्रमाण है कि मनुष्य अपने रागों का दास बन गया है। फिर जो रागों की दासता करता है, वह उनका नियंत्रण कैसे करेगा?

व्यास और भीष्म तथा स्वयं श्रीकृष्ण भी मुझे बार-बार समझा रहे हैं कि मेरी यह वेदना व्यर्थ है, मेरा यह अनुताप आधारविहीन है; क्योंकि युद्ध को निमंत्रण हमने नही दिया, वह बरबस हम पर थोपा गया था।

अत्याचार दुर्योधन ने मचा रखा था, हम उसका निराकरण खोजते हुए अपनी इच्छा के विरुद्ध युद्ध में आ गिरे। किंतु यह मेरी शंकाओं का समाधान नहीं है। जीवन की सार्थकता किसी भी ध्येय की प्राप्ति में नहीं, उसकी ओर निरंतर सन्मार्ग पर चलते रहने में है। हमारे पाँव कहाँ पहुँच रहे हैं यह प्रश्न मुख्य नहीं हो सकता, मुख्य बात तो यही है कि हमारे पॉव किस मार्ग पर पड़ रहे हैं।और अगर यह कहिए कि विजय के लिए युद्ध अवश्यंभावी है, तो विजय को मैं कोई बड़ा ध्येय नहीं मान सकता। जिस ध्येय की प्राप्ति धर्म के मार्ग से नहीं की जा सकती, वह या तो बड़ा ध्येय नहीं है अथवा अगर है तो फिर उसे पाप के मार्ग से पाने का प्रयास व्यर्थ है। संग्राम के कोलाहल में चाहे कुछ भी सुनाई नहीं पड़ा हो, किंतु आज मैं अपनी आत्मा की इस पुकार को स्पष्ट सुन रहा हूँ कि युधिष्ठिर ! तुम जो चाहते थे वह वस्तु तुम्हें नहीं मिली। एक-एक कर तुम्हारे सारे शत्रु विनष्ट हो गए किंतु स्वयं नष्ट होते-होते उन्होंने उस दुनिया को भी भली-भॉंति बरबाद कर दिया, जिस पर तुम राज करना चाहते थे। इस जर्जर और विषण्ण विश्व की वेदना उनके लिए नही है जो मर चुके हैं, बल्कि उनके लिए है जिन्हें मृत्यु ने उगल दिया हैं। लड़ाई से पहले तुम दुःखी थे किंतु लड़ाई के बाद तुम और दुःखी रहोगे। इस प्रकार यह विजय असल में तुम्हारी दोहरी हार है।

अर्जुन, श्रीकृष्ण और अन्य बहुतेरे लोग तन से जीवित किंतु मन से निर्जीव, इस युधिष्ठिर को खीचकर सिंहासन के पास ले आए हैं। किंतु मुझे अब तक यह नहीं सूझता है कि अपने पश्चाताप को कहॉ छिपाऊँ? और क्या करूँ कि देश के अगणित नर-नारियों के ऑसू शीघ्र-से-शीघ्र सूख जाएँ और उनके अधरों की लुप्त मुस्कान एक बार फिर से लौट आए। केवल भीष्म ही नही, मुझे लगता है, भारत की विशाल संस्कृति ही आज शरशय्या पर सोई हुई है। कौन है वह उपाय जिससे यह संस्कृति मृत्यु के मुख में पड़ने से बचाई जा सकती है? मेरी सबसे बड़ी चिंता यह है कि संग्राम तो जैसे-तैसे समाप्त हो गया किन्तु उससे देश भर में मार-काट की जो मानसिकता फैली है, उसका क्या होगा ? क्या लोग हिंसा के इस खेल को दुहराते जाएँगे अथवा यह विचार कर शांति से काम लेंगे कि शत्रुओ का भी मस्तक उतारना बर्बरता और जंगलीपन का काम है।

प्रश्न-अभ्यास

1. युधिष्ठिर के संताप के विभिन्न कारणों को दृष्टि में रखते हुए उसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए ।
2. ''युधिष्ठिर ! वीरो को लेकर तो मैं स्वर्ग चला, अब विधवाओं को लेकर तुम राज करो,'' यह उक्ति किसकी है ? इसमे छुपे व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।
3. युद्ध की समाप्ति के बाद हस्तिनापुर की राजधानी के हृदय विदारक दृश्य को अपने शब्दों मे लिखिए।
4. ''हम जिस कर्म में इतने उत्साह से लगे हुए थे, वह असल में गर्हित कर्म था और उसे धर्म का विशेषण देना धर्म का नितांत अपमान करना है।'' उपर्युक्त कथन की व्याख्या कीजिए।
5. ''दोनों पक्षों के सामने साध्य प्रमुख और साधन गौण हो गए।'' कथन का तात्पर्य स्पष्ट कीजिए।
6. निम्नांकित उक्तियों का आशय स्पष्ट कीजिए :
   (क) 'हिंसा का आदि भी अधर्म है, मध्य भी अधर्म है और अंत भी अधर्म है।'
   (ख) 'जीवन की सार्थकता किसी भी ध्येय की प्राप्ति में नहीं, उसकी ओर निरंतर सन्मार्ग पर चलते रहने मे है।'
   (ग) 'भारत की विशाल संस्कृति ही आज शरशय्या पर सोई हुई है।'
7. 'यह विजय असल मे तुम्हारी दोहरी हार है।' युधिष्ठिर ने ऐसा क्यों कहा ?
8. युधिष्ठिर के परिताप से विश्व शाति के लिए क्या संदेश उभरकर सामने आता है ?
9. युद्ध के पूर्व और युद्ध के उपरांत युधिष्ठिर की मनःस्थिति की तुलना कीजिए।
10. 'प्यारे अभिमन्यु की हत्या पाप से की गई तो भीष्म, द्रोण, भूरिश्रवा और स्वयं दुर्योधन का वध भी पुण्य से नही हुआ।' इन लोगों का वध किस अनीति से हुआ, अध्यापक की सहायता से जानकारी प्राप्त कीजिए।
11. ''युद्ध कभी भी धर्म के पथ पर रहकर लड़ा नही जा सकता।'' इस विषय पर वाद-विवाद प्रतियोगिता आयोजित कीजिए।

रघुवीर सिंह

(1908 ई.)

रघुवीर सिंह का जन्म सीतामऊ (मध्यप्रदेश) में हुआ था। उनके पिता सीतामऊ रियासत के महाराजा थे। उनकी प्रारंभिक शिक्षा घर पर हुई और उच्च शिक्षा होलकर कॉलेज, इंदौर तथा आगरा विश्वविद्यालय में हुई। ''मालवा में युगांतर'' नामक शोध-ग्रंथ पर उनको आगरा विश्वविद्यालय से डी. लिट्. की उपाधि प्राप्त हुई। इतिहास के अच्छे विद्वान् होने के साथ-साथ वे अच्छे हिन्दी गद्य लेखक भी हैं। उनकी रचनाएँ निम्नलिखित हैं–

'पूर्व मध्यकालीन भारत', 'मालवा में युगांतर', 'पूर्व आधुनिक राजस्थान' (इतिहास ग्रंथ), 'शेष स्मृतियाँ', 'सप्तदीप', 'बिखरे फूल', 'जीवन-कण' (साहित्यिक कृतियाँ)।

रघुवीर सिंह की साहित्यिक रचनाओं का आधार भी इतिहास ही है किंतु इतिहास के शुष्क तथ्यों को उनकी लेखनी ने सजीव और रोचक बना दिया हैं। भाषा में खड़ी बोली का प्रांजल रूप विद्यमान है। भाषा और शब्दों के प्रति इनका कोई आग्रह नहीं है। कहीं भाषा यदि संस्कृत-निष्ठ हो गई है तो कहीं उर्दू-बहुल और कहीं-कहीं उसमें बोलचाल का रस भी मिलता है। प्राचीन भारतीय इतिहास पर लिखते समय भाषा का संस्कृत-निष्ठ होना तथा मध्यकालीन बादशाहों-इमारतों का वर्णन करते हुए उर्दू-बहुल हो जाना स्वाभाविक है।

उनके निबंधों को भावात्मक शैली के निबंधों की कोटि में रखा जाता है। निबंधों में रोचकता, चित्रात्मकता तथा अलंकारिता उनकी शैली की प्रमुख विशेषताएँ हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में –''उनके भावात्मक प्रबंधों की शैली बहुत ही मार्मिक एवं अनूठी है।''

'फतहपुर सीकरी' निबंध उनकी प्रसिद्ध पुस्तक ''शेष स्मृतियाँ'' से लिगा गया है। इसमें लेखक ने फतहपुर सीकरी के बुलंद दरवाज़े को विजय तोरण न कहकर अकबर का स्वप्न-स्मारक कहा है। बुलंद दरवाजे से जुड़ी मुग़लकालीन इतिहास की अनेक घटनाओं का वर्णन करते हुए लेखक ने अकबर की महानता का परिचय भी दिया है।

4. फतहपुर सीकरी

संसार का सबसे बड़ा विजय-तोरण, वह बुलंद दरवाज़ा, छाती निकाले दक्षिण की ओर देख रहा है। इसने उन मुग़ल योद्धाओं को देखा होगा जो सर्वप्रथम मुग़ल साम्राज्य के विस्तार के लिए दक्षिण की ओर बढ़े थे। इसने विद्रोही औरंगजेब की उमड़ती हुई सेना को घूरा होगा, और पास ही पराजित दारा के स्वरूप में अकबर के आदर्शों का पतन भी इसे देखना पड़ा होगा। अंतिम मुग़लों की सेनाएँ भी इसी के सामने होकर निकली होंगी। वे सेनाएँ जिनमें नर्तकियाँ और स्त्रियाँ भी रणक्षेत्र पर जाती थीं और रणक्षेत्र को भी विलासभूमि में परिणत कर देती थीं। यदि आज यह दरवाज़ा अपने संस्मरण कहने लगे, पत्थरों का यह ढेर बोल उठे, तो भारत के न जाने कितने अज्ञात इतिहास का पता लग जाए और न जाने कितनी ऐतिहासिक त्रुटियाँ ठीक की जा सकें।

यह एक विजय-तोरण है, खानदेश की विजय का स्मारक। किंतु यदि देखा जाए तो यह दरवाज़ा अकबर द्वारा भारतीय सभ्यता पर प्राप्त की गई विजय का ही एक महान् स्मारक है। अकबर ने अपने हृदय की विशालता को इस दरवाजे की विशालता में व्यक्त किया है :

''यह संसार एक पुलिया है, इसके ऊपर से निकल जा, किंतु इस पर घर बनाने का विचार मन में न ला। जो यहाँ एक घंटा भर भी ठहरने का इरादा करेगा, वह चिरकाल तक यहाँ ही ठहरने को उत्सुक हो जाएगा। सांसारिक जीवन तो एक घड़ी भर का ही है, उसे ईश्वर-स्मरण तथा भगवत्शक्ति में बिता, ईश्वरोपासना के अतिरिक्त सब कुछ व्यर्थ है, सब कुछ असार है।''

सांसारिक जीवन की असारता संबंधी इन पंक्तियों को एक विजय तोरण पर देखकर कुतूहल होता है। अकबर मानव जीवन के रहस्य को ढूँढ निकालने तथा दो पूर्णतया भिन्न सभ्यताओं का मिश्रण करने निकला

था, किंतु वह वास्तविक वस्तु तक नही पहुँच पाया, मृगतृष्णा के जल की नाई उन्हे ढूँढ़ता रहा और उसे अंत तक उनका पता न मिला। जीवन भर अकबर भारतीय तथा मुस्लिम सभ्यताओ के सम्मिश्रण का स्वप्न देखता रहा। यह एक सुखद स्वप्न था। अतः जब अकबर के उस मानव-जीवन-स्वप्न का अंत हुआ तब सभ्यता की यह स्वप्निल विजय भी नष्ट हो गई और वह सम्मिश्रण केवल एक स्वप्न-वार्ता नानी की एक कहानी मात्र बन गया। बुलंद दरवाज़ा उसी सुखद स्वप्न की एक स्मृति है, एवं इसे विजय-तोरण न कहकर स्वप्न स्मारक कहना अधिक उपयुक्त होगा।

उस दरवाजे में होकर, उस स्वप्न को याद करते हुए, हम एक आँगन में जा पहुँचते हैं, सामने ही दिखाई पड़ती है एक सुंदर श्वेत क़ब्र। यह उस साधु की समाधि है जिसने अपने पुण्य को देकर मुग़ल घराने को आरंभ मे ही नष्ट होने से बचाया **था**।* अपनी सुंदरता के लिए, अपनी कला की दृष्टि से, यह एक अनुपम अद्वितीय कृति है। समस्त उत्तरी भारत के भिन्न-भिन्न धर्मानुयायी हिन्दू-मुसलमान आदि प्रति वर्ष इस क़ब्र पर खिंचे चले आते हैं, वे सोचते हैं कि जिस व्यक्ति ने जीते जी अकबर को भिक्षा दी, क्या उसी व्यक्ति की आत्मा स्वर्ग में बैठी उनकी छोटी-सी इच्छा भी पूर्ण न कर सकेगी?

और, सामने ही है वह मस्जिद, जो यद्यपि पूर्णतया मुस्लिम ढंग की है और जो अपनी सुंदरता के लिए भी बहुत प्रख्यात नहीं है, तथापि वह एक ऐसी विशेषता के लिए विख्यात है जो किसी दूसरे स्थान को प्राप्त नही हुई। इसी मस्जिद ने एक भारतीय मुसलमान सम्राट को उपदेशक के स्थान पर खड़ा होकर प्रार्थना करते देखा था। भारतीय मुस्लिम साम्राज्य के इतिहास में यह एक अनोखी-अद्वितीय घटना थी, और वह घटना इसी मस्जिद में घटी थी।

अकबर को सूझी थी कि इस्लाम धर्म की असहिष्णुता को मिटा दे, उसकी कठोरता को भारतीय सहिष्णुता की सहायता से कम कर दे। क्यों न वह भी प्रारंभिक खलीफ़ाओ के समान स्वयं धर्माधिकारी के उच्चासन

---

* प्रसिद्ध है कि शेख सलीम चिश्ती नामक एक सूफी फकीर के आशीष से अकबर को पुत्र की प्राप्ति हुई थी। फकीर के नाम पर अकबर ने उस पुत्र का नाम सलीम रखा जो बाद में जहाँगीर नाम से बादशाह बना।

पर खड़ा होकर सच्चे मानव धर्म का प्रचार करे। उसके साथ अबुल फ़ज़ल और फैज़ी ने उसके आदर्श को सराहा। और उस दिन जब पूरी-पूरी तैयारियाँ हो गई तब अकबर पूर्ण उत्साह के साथ उस उच्चासन पर चढ़कर प्रार्थना करने लगा :

"उस जगत्-पिता ने मुझे साम्राज्य दिया। उसने मुझे बुद्धिमान, वीर और शक्तिशाली बनाया। उसने मुझे दया और धर्म का मार्ग सुझाया और उसी की कृपा से मेरे हृदय में सत्य के प्रति प्रेम का सागर हिलोरें भरने लगा। कोई भी मानवीय जिह्वा उस परमपिता के स्वरूप, गुणों आदि का पूरा-पूरा वर्णन नहीं कर सकती। अल्लाहो अकबर ! ईश्वर महान् है।"

अकबर ने स्वप्न देखा था, जिसमें वह एक महात्मा तथा नवीन धर्म-प्रचारक की तरह खड़ा उपदेश दे रहा था और उसकी समस्त प्रजा स्तब्ध खड़ी उसके उपदेश को एकाग्रचित्त हो सुन रही थी। किन्तु जीवन की वास्तविकता की टक्कर खाकर उसका वह स्वप्न भंग हो गया, उसे प्रथम बार ज्ञात हुआ कि स्वप्नलोक भौतिक संसार से दूर एक ऐसा स्थान है, जहाँ मनुष्य अपनी इच्छाओ तथा आकांक्षाओं के साथ स्वच्छंदतापूर्वक खेल सकता है, किन्तु उन इच्छाओं का भौतिक जगत् में कुछ भी स्थान नहीं है।

और, यह है उस अकबर का दीवान-ए-खास। बाहर से तो एक साधारण दुमंजिला मकान दीख पड़ता है, किन्तु सचमुच में यह भारतीय कला का एक अद्भुत नमूना है। एक ही स्तंभ पर सारी ऊपरी मंजिल खड़ी है। उसे निर्माण करने में भारतीय कारीगरों ने बहुत बुद्धि लगाई होगी। अकबर के समय इस मकान में क्या होता था ? इस विषय पर इतिहासकारों में मतभेद है कि यहीं धार्मिक वाद-विवाद होते थे या नहीं। कुछ का कथन है कि इसी महान् स्तंभ पर बैठकर अकबर विभिन्न धर्मानुयायियों के कथन सुना करता था और वे धर्मानुयायी नीचे चारों ओर बैठे बारी-बारी से अपने-अपने धर्म की व्याख्या करते थे।

अकबर का मस्तिष्क विश्व-बंधुत्व तथा मानव-भ्रातृत्व के विचारों का पूर्ण आगार था ! भिन्न-भिन्न धर्मों का भीषण संघर्ष देखकर उसके इन विचारों को भयंकर ठेस लगती थी, कठोर आघात पहुँचता था। कुछ ऐसे मूल तत्त्वों का संग्रह कर वह एक ऐसे मत को प्रारंभ करना चाहता था,

जहाँ किसी भी प्रकार का वैषम्य न हो, जिसमें कोई धार्मिक संकीर्णता न पाई जाए। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह विभिन्न धर्मानुयायियों के कथन सुना करता था। उस महान् स्तंभ की ही तरह "ईश्वर एक है" इस एक सत्य पर ही अकबर ने दीन-ए-इलाही का महान् भवन-निर्माण किया। ज्यों-ज्यों यह स्तंभ ऊपर चढ़ता जाता है, त्यों-त्यों उसका आकार बढ़ता जाता है और अंत में ऊपर पहुँचकर एक ऐसा स्थान आता है, जहाँ पर धर्मानुयायी समान अवस्था में भाई-भाई की तरह मिल सकें। उस महान् धर्म दीन-ए-इलाही में जा पहुॅचने के लिये अकबर ने चार राहें बनाईं जो हिन्दू, मुसलमान, बौद्ध और ईसाइयों को सीधे विश्वबंधुत्व की उस विशद् परिधि में ले जा सकें।

यह दीवान-ए-खास एक तरह से अकबर के दीन-ए-इलाही का मूर्तिमान स्वरूप है। बाह्य दृष्टि से यह एक साधारण वस्तु दीख पड़ती है, किन्तु ध्यानपूर्वक देखा जाए तो यह अपने ढंग का निराला ही है। इसी भवन में दीन-ए-इलाही का प्रारंभ हुआ था और दीन-ए-इलाही के समान ही यह भवन एक परित्यक्त, उपेक्षित तथापि एक संपूर्ण आदर्श है।

दीवान-ए-खास के पास ही वह चौकोर चबूतरा है, जहाँ बादशाह अपनी साम्राज्ञियों तथा अपने प्रेमी मित्रों के साथ जीवित गोटों का चौसर खेला करते थे। प्रत्येक गोट के स्थान पर एक सुंदर दासी खड़ी रहती थी। पूर्णिमा की रात को जब समस्त संसार पर शीतल चाँदनी छिटकी होती, उस समय उस स्थान पर चौसर का वह खेल कितना मादक रहा होगा।

इस स्वप्नलोक में एक स्थान वह भी है, जहाँ अकबर अपनी सारी श्रेष्ठता, अपने सारे सयानेपन को भूलकर कुछ समय के लिए आँखमिचौनी खेलने लगता था। अकबर के वक्षस्थल में भी एक छोटा-सा हृदय धड़कता था। अपने महान् उच्चपद की महत्ता का भार निरंतर वहन करते-करते कई बार वह शैथिल्य का अनुभव करता। आठों पहर सम्राट रहकर मानव जीवन से दूर गौरव और उच्च पद के ऊपर रेगिस्तान में पड़ा-पड़ा अकबर तड़पता था। उसका हृदय उन कृत्रिम बंधनों से जकड़ा हुआ फड़फड़ाता था। इसी कारण जब उस भावुक हृदय में विद्रोहाग्नि धधक उठती थी, तब कुछ समय के लिए अपने पद की महत्ता तथा गौरव को एक ओर रखकर वह सम्राट भी बालकों के उस

सुखपूर्ण भोले-भाले संसार में घुस पड़ता था, जहाँ मनुष्य मात्र, चाहे वह राजा हो या रंक, एकसमान हैं और सब साथ ही खेलते हैं। बालकों के साथ उनके उस अनोखे लोक में विचर कर अकबर वह जीवन-रस पीता था, जिसके बिना साम्राज्य के उस गुरुतम भार से दब कर वह कभी का इस संसार से विदा हो गया होता।

सीकरी का सीकर सूख गया, उसके साथ ही मुस्लिम साम्राज्य का विशाल वृक्ष भी भीतर ही भीतर खोखला होने लगा। करोड़ों पीड़ितों के तपतपाए आँसुओं से सींचे जाकर उस विशाल वृक्ष की जड़ें मुर्दा होकर ढीली हो गई थीं, अतः जब अराजकता, विद्रोह तथा आक्रमण की भीषण आँधियाँ चलने लगीं, युद्ध की चमचमाती हुई चपला चमकी, पराजय रूपी वज्रपात होने लगे तब तो यह साम्राज्य रूपी वृक्ष उखड़कर गिर पड़ा, टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर गया और उसके अवशेष, विलास और ऐश्वर्य का वह भव्य ईंधन, असहायों के निश्वासों तथा शहीदों की भीषण फुंकारों से जलकर भस्म हो गए। जहाँ एक सुंदर वृक्ष खड़ा था, जो संसार में एक अनुपम वस्तु थी, वहाँ कुछ ही शताब्दियों में रह गए गंभीर गह्वर, उस वृक्ष के कुछ अधजले झुलसे हुए यत्र-तत्र बिखरे टुकड़े तथा उस विशाल वृक्ष की मुट्ठी भर भस्म ! सीकरी के खंडहर उसी भस्म को रमाए खड़े हैं।

सब कुछ सपना ही तो था . . . देखते ही देखते विलीन हो गया। दो आँखों की यह सारी करामात थी। एकाएक झोंका आया, अकबर मानो सोते से जग पड़ा। स्वप्नलोक को छोड़कर भौतिक संसार में लौट आया। स्वप्न भंग हो गया और साथ ही स्वप्न लोक भी उजड़ गया . . . और तब रह गई उनकी एकमात्र शेष स्मृति। किन्तु दो आँखें – अकबर की ही आँखें– ऐसी थीं जिन्होंने यह सारा स्वप्न देखा था, जिनके सामने ही इस स्वप्न का सारा नाटक कुछ काल के लिए ही क्यों न हो – एक सुंदर मनोहारी नाटक खेला गया था, . . . जिसमें अकबर स्वयं एक पात्र था, उस स्वप्नलोक के रंगमंच पर पूरी शान और अदा के साथ अपना पार्ट खेलता था। उन दो आँखों के फिरते ही, उनके बंद होने के बाद उस स्वप्न की रही सही स्मृतियाँ भी लुप्त हो गईं। जो एक समय सच्ची घटना थी, जो बाद में स्वप्नमात्र रह गया था, आज उसका कुछ भी शेष न रहा। अगर कुछ बाकी बचा है तो केवल वह सुनसान भग्न रंगमंच, जहाँ

यह दिव्य स्वप्न आया था, जहाँ जीवन का यह अद्भुत रूपक खेला गया था, जहाँ कुछ काल के लिए वह महान् भारत विजयी सम्राट अपनी महत्ता को भूल कर, अपने गौरव को ताक पर रखकर, एक साधारण मानव बन जाता था, रंगरेलियाँ करता था, बालक की तरह उछलता था, जीवन के साथ आँखमिचौनी खेलता था और अमरत्व के सपने देखता था। सीकरी ही वह स्थान है जिसे देखकर मालूम होता है कि मनुष्य कितना ही महान् और बड़ा क्यों न हो जाए, उसकी भी छाती में एक कोमल भावुक हृदय धड़कता है, उस दिल में भी अनेक बार आकांक्षाओं के भीषण संग्राम होते हैं, ऐसे पुरुष को भी मानवी दुःख-दर्द, सांसारिक कामनाएँ तथा भौतिक वासनाएँ सताती हैं।

शताब्दियाँ बीत गईं और आज भी सीकरी के वे सुंदर रंगीले खंडहर खड़े हैं। उस नवजात शिशु नगरी ने केवल पन्द्रह वर्ष ही शृंगार किया, और फिर उसके प्रेमी ने उसे त्याग दिया, उसने उसे ऐसा भुला दिया कि कभी भूल से भी लौटकर मुँह नहीं दिखाया। अकबर के समय में ही उसने वैभव को त्यागकर विधवा-वेश पहिन लिया था। और अकबर की मृत्यु होते ही तो सब कुछ लुट गया, हृदय विदीर्ण हो गया। भारत-विजेता, मुग़ल-साम्राज्य के निर्माता, महान् अकबर की प्यारी नगरी का वह निर्जीव शरीर शताब्दियों से पड़ा धूल-धूसरित हो रहा है।

प्रश्न-अभ्यास

1. बुलंद दरवाज़े से जुड़ी मुग़लकालीन इतिहास की किन घटनाओं की ओर लेखक ने संकेत किया है ?
2. अकबर ने विजय-तोरण पर संसार की असारता को प्रकट करनेवाली पंक्तियाँ क्यों अंकित कराईं। उन पंक्तियों में निहित विचारों को भी स्पष्ट कीजिए।
3. लेखक की दृष्टि में बुलंद दरवाज़े को विजय-तोरण न कहकर स्वप्नस्मारक कहना क्यो अधिक उपयुक्त है ?
4. अकबर का स्वप्न क्या था ? वह कैसे भंग हो गया ?
5. प्रस्तुत पाठ के आधार पर अकबर के धर्म संबंधी विचारों पर प्रकाश डालिए। भारत की वर्तमान परिस्थितियों मे उनकी उपयोगिता पर विचार कीजिए।

6. "मनुष्य कितना भी बड़ा और महान् क्यों न हो जाए उसकी भी छाती में एक कोमल भावुक हृदय धड़कता है।" अकबर की प्रकृति का परिचय देते हुए लेखक के इस कथन की व्याख्या कीजिए।
7. फतहपुर सीकरी की वास्तुकला की कुछ विशेषताएँ बताइए।
8. जिस शैली में यह पाठ लिखा गया है उसी शैली में किसी अन्य ऐतिहासिक इमारत का वर्णन कीजिए।
9. अवधारक 'भी' का प्रयोग किस दशा में होता है ? लेखक ने प्रथम अनुच्छेद में इसका कितनी बार प्रयोग किया है और किस उद्देश्य से ?
10. लेखक ने अपनी शैली को प्रभावशाली बनाने के लिए निम्नांकित युक्तियाँ अपनाई हैं। इस पाठ में से प्रत्येक के दो-दो उदाहरण दीजिए:
    (क) विशेषणों का सटीक प्रयोग।
    (ख) शब्दक्रम का विपर्यय।
    (ग) नए अर्थों की अभिव्यक्ति के लिए शब्दों का भावात्मक प्रयोग।
    (घ) संयोजकों से वाक्यारंभ।

फणीश्वरनाथ 'रेणु'

(1921-77)

फणीश्वरनाथ 'रेणु' का जन्म बिहार के पूर्णिया ज़िले के औराही हिंगना नामक गाँव में हुआ था। उन्होंने 1942 ई. के ''भारत छोड़ो'' स्वाधीनता आंदोलन में सक्रिय भाग लिया। नेपाल के राणाशाही विरोधी आंदोलन में भी उन्होंने भाग लिया। वे राजनीति में प्रगतिशील विचारधारा के समर्थक थे। 1953 ई. में वे साहित्य-सृजन के क्षेत्र में आए और उन्होंने कहानी, उपन्यास तथा निबंध आदि विविध साहित्यिक विधाओं में मौलिक रचनाएँ प्रस्तुत कीं।

'रेणु' हिन्दी के प्रथम आंचलिक कथाकार हैं। उन्होंने अंचल-विशेष को अपनी रचनाओं का आधार बनाकर, आंचलिक शब्दावली और मुहावरो का सहारा लेते हुए, वहाँ के जीवन और वातावरण का चित्रण किया है। अपनी गहरी मानवीय संवेदना के कारण वे अभावग्रस्त जनता की बेबसी और पीड़ा भोगते-से लगते हैं। किंतु इस संवेदनशीलता के साथ यह विश्वास अवश्य जुड़ा है कि आज के त्रस्त मनुष्य में अपनी जीवन-दशा को बदल लेने की शक्ति भी है।

उनके प्रसिद्ध कहानी-संग्रह हैं — 'ठुमरी', 'अगिनखोर', 'आदिम रात्रि की महक'। 'तीसरी कसम उर्फ मारे गए गुलफाम' कहानी पर फिल्म भी बन चुकी है। 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं।

'रेणु' मूलतः कहानीकार तथा उपन्यासकार हैं, किंतु उन्होंने अनेक मर्मस्पर्शी निबंध भी लिखे हैं। उनके निबंधों में भी उनके कथाकार की सजीवता और रोचकता बनी हुई है और यथाप्रसंग आंचलिक हृदय भी स्पंदित हो उठता है।

'रेणु' का प्रस्तुत निबंध 'उतरी स्वप्नपरी : हरित क्रांति' उनके 'श्रुत-अश्रुत पर्व' नामक रचना-संग्रह से लिया गया है, जिसमें उनके वैयक्तिक निबंध, संस्मरण और रिपोर्ताज आदि संकलित हैं। इस लेख का भी मूल स्वर आत्माभिव्यंजक है। भावात्मक और चित्रात्मक भाषा के कारण यह निबंध और भी मर्मस्पर्शी बन गया है। बिहार की कोसी नदी के भिन्न-भिन्न रूप हैं। यह एक ओर ''मैया'' तो दूसरी ओर ''डायन'' भी है। किन्तु स्वतंत्रता के उपरांत किए गए प्रयासों ने यह आशा बँधाई कि कोसी का यह भयानक रूप अब अधिक दिन नहीं रहेगा, शीघ्र ही धरती के दिन फिरेंगे और सचमुच ही इस प्रयास के बाद कोसी अन्नपूर्णा ही नहीं, परिपूर्णा बन गई और उस अंचल में स्वप्नलोक की परी उतर आई।

5. उतरी स्वप्नपरी : हरित क्रांति

कोसी या उसके किसी अंचल के संबंध में जब भी कुछ कहने या लिखने बैठता हूँ बात बहुत हद तक व्यक्तिगत हो जाती है, ऐसा होना स्वाभाविक भी है। क्योंकि कोसी हमारे लिए नदी ही नहीं, माई भी है। पुण्यसलिला, छिन्नमस्ता, भीमा, भयानका भी, प्रभावती-कोसी मैया !!

हम कोसी के उस अंचल के वासी हैं, जिससे होकर करीब तीन-चार सौ वर्ष पहले कोसी बहा करती थी। और यह तो सर्वविदित है कि कोसी जिधर से गुजरती है धरती बाँझ हो जाती। सोना उपजाने वाली काली मिट्टी सफ़ेद बालूचरों में बदल जाती। लाखों एकड़ बंध्या धरती उत्तर नेपाल की तराई से शुरू होकर दक्षिण गंगा के किनारे तक फैली हुई परती-पूर्णिया के नक्शे को दो असम भागों में बाँटती हुई।

इस "परती" के उदास और मनहूस बादामी रंग को बचपन से ही देखता आया हूँ—दूर तक फैली साकार उदासी। जिस पर बरसात के मौसम में क्षणिक आशा की तरह कुछ दिनों के लिए हरियाली छा जाती—वरना बारहों महीने दिन-रात, सुबह-शाम धूसर और वीरान...।

और इस मरी हुई मिट्टी पर बसे हुए इनसान !

मलेरिया और कालाजार से जर-जर शरीर, रक्त मांसहीन चलते-फिरते नरकंकालों के समूह, जिनकी ज़िंदगी में न रस और न कोई रंग; रोने और कराहने के सिवा कुछ नहीं जानते थे — न हँसना न मुसकराना। जिनके चेहरों पर हमेशा आतंक की रेखाएँ छाई रहतीं और आँखों में दुनिया भर की उदासी। ऐसी आँखों में रंगीन और सुनहले सपने कैसे पल सकते हैं?

बचपन के उन दिनों की याद आती है। हर साल हमारे एक दर्जन साथी हमजोली हमसे बिछड़ जाते . . . . हमारे साथ पढ़नेवाले, साथ

खेलनेवाले। और, हर ऐसे मौके पर हमें यह एहसास होता— शायद, अगले साल हम भी नहीं रहेंगे। अगले साल क्या, अगले महीने या दूसरे ही दिन अथवा घड़ी में घड़ा फूट सकता है। हमने मैलेग्नेण्ट-मलेरिया से मरते हुए लोगों को देखा था–डेढ़ घंटे में ही मृत्यु !

किन्तु विधाता की सृष्टि में मानव ही सर्वश्रेष्ठ प्राणी है। यह निराशा के घोर अंधकार में भी नन्हीं आशा का टिमटिमाता हुआ दीप लेकर आगे बढ़ता रहा है। अंधकार से लड़ता रहा है।

मैंने शुरू में ही कह दिया है कि कोसी के किसी अंचल पर कुछ कहते समय मेरी बात बहुत हद तक व्यक्तिगत हो जाया करती है। आज ही नहीं बीस-पच्चीस साल पहले से ही . . . !!

याद है, बीस-बाईस साल पहले—''डायन कोसी'' शीर्षक से मेरा एक रिपोर्ताज ''जनता'' में प्रकाशित हुआ था। जिसका अंत आशा भरे इन शब्दों में हुआ था—''परती के दिन फिरेंगे। . . . प्राणों में घुले रंग धरती पर फैल जाएँगे।''

इस रिपोर्ताज ने मेरे दोस्तों को एक मसाला दिया। वे अक्सर मुझे चिढ़ाने के लिए कहा करते, ''क्यों, आपके प्राणों में घुले हुए रंग धरती पर फैल गए क्या ? . . . . जनाब!आपके सुनहले सपनों के अंडे कब फूटेंगे—सोने की चिड़ियाँ कब चहचहाएँगी ?''

मैं पहले थोड़ा अप्रतिभ हो जाता। फिर हँसकर दृढ़तापूर्वक जवाब देता, ''आज़ादी की पहली सुबह . . .।''

आज़ादी के बाद इसी अंचल की पृष्ठभूमि में मेरा पहला उपन्यास प्रकाशित हुआ, जिसका एक प्रमुख पात्र जो मलेरिया और कालाज़ार उन्मूलन में लगा हुआ है। इसी इलाके से अपने एक प्रियजन को पत्र लिखता है—यहाँ की मिट्टी में बिखरे, लाखों-लाख इनसानों की ज़िन्दगी के सुनहरे सपनों और अधूरे अरमानों को बटोरकर यहाँ के प्राणियों के जीव-कोष में भर देने की कल्पना मैंने की थी। मैंने कल्पना की थी—हज़ारों स्वस्थ इनसान–हिमालय की कंदराओं में अरुण-तिमुर-सुण-कोसी के संगम पर—एक विशाल ''डैम'' बनाने के लिए पर्वत-तोड़ परिश्रम कर रहे हैं . . . लाखों एकड़ बंध्या धरती, कोसी-कवलित, मरी हुई मिट्टी शस्य-श्यामला हो उठेगी। कफ़न-जैसे सफ़ेद, बालू-भरे मैदानों में धानी रंग की ज़िदगी की बेल लग जाएँगी। मकई के खेतों में घास गढ़ती

हुई औरतें बेवजह हँस पड़ेंगी। मोती-जैसे सफ़ेद दातों की दूधिया चमक ...।

और, तब मेरे दोस्तों को मज़ाक के लिए – "धानी रंग, ज़िन्दगी की बेल, मकई के खेत और दूधिया चमक" जैसे कई शब्द मिल गए। समय-असमय मेरे इन शब्दों के व्यंग्यबाण से मुझे ही मर्माहत करने का अवसर वे नहीं खोते। और, मैं हमेशा पूर्ववत् हँस कर कभी आशा भरी कोई बहुत बड़ी बात अथवा किसी श्लोक या किसी पद्य की ऐसी ही पंक्ति –"नर हो न निराश करो मन को" गाने लगता। इसलिए, जब सचमुच एक दिन कोसी-योजना का आयोजन होने लगा– मैं अपने को ज़ब्त नहीं रख सका। दूने उत्साह से अपने दूसरे उपन्यास "परती परिकथा" में हाथ लगा दिया। उपन्यास लिखने के दौरान पहाड़ों की कंदराओं में तपस्या में लीन देवगणों को बार-बार जाकर देख आता। मेरा नया तीर्थ बराहक्षेत्र, जहाँ आदमी लड़ रहे थे। बड़े-बड़े टनेल में पहाड़ काटने वाले पहाड़ी जवानों से बातें करके धन्य हो जाता। अरुण तिमुर और सुणकोसी के संगम पर बैठकर पानी मापने वाले, सिल्ट की परीक्षा करनेवाले विशेषज्ञों को श्रद्धा तथा भक्ति से प्रणाम करके लौट आता। हर बार नई आशा की रंगीन किरण लेकर लौटता।

मेरा उपन्यास समाप्त हुआ, फिर प्रकाशित हुआ। किन्तु उस समय कोसी प्रोजेक्ट परीक्षा-निरीक्षा के स्तर पर ही चल रहा था। अतः मेरे कृपालु मित्रों को इस बार मजाक का ही नहीं, बहस का भी विषय मिला।

"धूसर, वीरान अंतहीन-प्रांतर। पतिता-भूमि, परती-ज़मीन, बंध्या धरती, धरती नहीं, धरती की लाश। जिस पर कफ़न की तरह फैली हुई हैं– बालूचरों की पंक्तियाँ . . .।" परती : परिकथा का प्रारंभ इन्हीं शब्दों से हुआ है।

और, अंत हुआ है इन पंक्तियों से — "पर्दे पर धीरे-धीरे बादामी छाया छा जाती है। वीरान धरती का रंग बदल रहा है और धीरे-धीरे हरा, लाल, पीला, बैंगनी। हरे-भरे खेत। परती पर रंग की लहरें बाँसुरी का सुर प्रदान कर रही हैं। अमृत-हास्य परती पर अंकित हो रहा है . . . आसन्नप्रसवा परती हँसकर करवट लेती है!"

बाद में मुझे भी लगने लगा कि मैंने अतिरिक्त उत्साह में संभवतः

बहुत बढ़-चढ़कर बातें कह दी हैं। मित्रों की बातें मेरे कानों के पास रह-रहकर गूँज जातीं — "भाई साहब ! कागज पर रंग की लहरें लहराना और अमृत हास्य अंकित करना बहुत आसान है, परती पर नहीं।" अभी कोसी प्रोजेक्ट का "क" भी नहीं शुरू हुआ और आप हरे-भरे खेत देखने लग गए? सावन के अंधे को हरियाली-ही- हरियाली सूझती है। ऐसा भी तो हो सकता है कि डैम बनने और बनाने के बावज़ूद इस परती-धरती को सींचकर भी खेती संभव नहीं हो ? तब, आपकी करवट लेती इस आसन्नप्रसवा धरती के स्वप्न का क्या होगा? आपके वे सपने मिट्टी में बिखरे ही बिखरे रह जाएँगे।

किन्तु इन सारी निराश वाणियों के बावज़ूद अंततः मेरे मन के कोने में प्रतिष्ठित दृढ़ विश्वास का स्वर कवि चंडीदास के सुर में मुखरित होता :

"सुन रे मानिस भाय।
सबरि ऊपर मानुस सत्य तार ऊपर किछू नाय।"

तीन साल पहले की बात है। गाँव पहुँचकर एक नई और दिलचस्प कहानी सुनने को मिली। हमारे गाँव का एक कर्मठ आदमी दस-बारह साल पहले गाँव छोड़कर पूरब-मुलुक बंगाल की ओर कमाने लगा। पहले तो वह छठे-छमाहे, होली-दिवाली में गाँव आता भी था लेकिन, पिछले आठ साल से वह गाँव नहीं आया था, उधर ही बस गया था। गॉव में एक डेढ़ बीघे ज़मीन थी, उसी को देखने के लिए वह आठ साल के बाद आया। स्टेशन पर उतरकर उसने अपने गॉव की पगडंडी पकड़ी। कुछ दूर जाने के बाद उसने अपने गॉव की ओर निगाह दौड़ाई। विशाल परती के उस छोर पर उसका गाँव . . . लेकिन, यह क्या . . . यहाँ परती कहॉ है ? उसे लगा, वह रास्ता भूल कर दूसरी ओर आ गया है— जहाँ तक नज़र जाती है, धान के खेत लहरा रहे हैं— चारों ओर हरियाली है। नहर, आहर और पैन-पुलिया और बाँध— यह कहॉ आ गया वह ? उसको विश्वास हो गया कि वह नीद में ऊँघता हुआ किसी दूसरे स्टेशन पर उतर गया है। वह स्टेशन लौट आया और चिंतित होकर पूछने लगा कि क्या यह वही स्टेशन है और अगर यह वही स्टेशन है तो उसका गाँव कहाँ चला गया, किधर चला गया ?

इसीलिए, गॉव के लड़कों ने इस आदमी को नया नाम दिया है—

''सुदामा'' । उसको देखते ही लोग गुनगुनाने लगते हैं —''सुदामा मंदिर देखि डर्‌यो।''

सो, गाँव को हमेशा छोड़कर पूरब-मुलुक बंगाल में बस जाने वाले सुदामा जी ने तब जमीन बेचने का इरादा बदल दिया। बंगाल में बसे परिवार को उठाकर फिर गाँव ले आए। पिछली बार डेढ़ बीघे मकई और मकई के बाद आइ-आर एइट धान . . . ।

इस अभिनव सुदामा चरित्र के बाद इस अंचल की प्रगति और परिवर्तन के बारे में और क्या कहा जाए ? जिस धरती पर कभी हरी दूब भी नहीं होती थी वहाँ धान और गेहूँ की बालियाँ झूमती हैं . . . . नहरों के जाल बिछ गए हैं . . . . परती का चप्पा-चप्पा हँस रहा है। सिंचाई, रासायनिक खाद और उन्नत बीज की महिमा से बंध्या धरती अन्नपूर्णा ही नहीं परिपूर्णा हो गई है। . . . जिस दिन हमारे खलिहान पर गेहूँ की पहली फसल कटकर आई — मेरा रोम-रोम पुलकित हो गया। मैंने बालियों को सिर से छुआकर मूल मंत्र का जाप किया। फिर, अपने दोनों उपन्यासों की निजी प्रतियाँ निकाल लाया और उनके अंतिम पृष्ठों पर लिख दिया —

''लाखों एकड़ कोसी-कवलित, भरी हुई मिट्‌टी शस्य श्यामला हो उठी है। कफ़न जैसे सफ़ेद बालू-भरे मैदान में धानी रंग की जिन्दगी के बेल लग गए हैं। मकई के खेतों में घास गढ़ती औरतें सचमुच हँस पड़ती हैं, सारी धरती मानो इंद्रधनुषी हो गई है।'' दिन फिरे हैं किसानों के। खेतों में ट्रैक्टर चल रहे हैं। सब मिलाकर एक स्वप्नलोक की सृष्टि साकार हो गई है।चारों ओर अमृतहास्य। एक हरित क्रांति अपनी पहली मंज़िल पर पहुँचकर सफल हुई है। सपने सच्चे भी होते हैं और अपने भी। . . .

जिन्हें विश्वास न हो, वे स्वयं आकर देख जाएँ-प्राणों में घुले हुए रंग धरती पर किस तरह फैल रहे हैं — फैलते जा रहे हैं।

प्रश्न-अभ्यास

1. 'कोसी या उसके किसी अंचल के संबंध में जब भी कुछ कहने या लिखने

बैठता हूँ तो बात बहुत हद तक व्यक्तिगत हो जाती है'। लेखक की इस स्वीकारोक्ति की पुष्टि पाठ से उपयुक्त वर्णन छाँटकर कीजिए।

2. कोसी का अभावशापित अंचल कब और किस प्रकार स्वप्नपरी के रूप में परिवर्तित हो गया ?
3. कोसी के विनाशक और मनमोहक दोनों रूपों का वर्णन अपने शब्दों में कीजिए।
4. ''परती के दिन फिरेंगे'' लेखक ने यह भविष्यवाणी किस विश्वास के आधार पर की ?
5. बच्चों द्वारा सुदामा नामकरण की उपयुक्तता बताइए।
6. निम्नलिखित अंशों का सप्रसंग भाव स्पष्ट कीजिए :
   (क) इस धरती के उदास और मनहूस बादामी रंग को बचपन से ही देखता आया हूँ– दूर तक फैली साकार उदासी।
   (ख) अगले साल क्या,अगले महीने या दूसरे ही दिन अथवा घड़ी में घड़ा फूट सकता है।
   (ग) कोसी हमारे लिए नदी ही नहीं, माई भी है।
   (घ) अभी कोसी प्रोजेक्ट का ''क'' भी नहीं शुरू हुआ आप हरे-भरे खेत देखने लग गए।
7. निम्नलिखित मुहावरों और लोकोक्तियों के अर्थ बताते हुए उनका अपने वाक्यों में प्रयोग कीजिए।
   (क) गूलर का फूल होना, सावन के अंधे को हरा ही हरा दीखना, रंगीन सुनहले सपने पालना, आशा का दीप, पर्वत-तोड़ परिश्रम, हाथ लगाना, बढ़-चढ़ कर बातें करना, मिट्टी में बिखरना, जाल बिछना, रोम-रोम पुलकित हो उठना, दिन फिरना, सपने सच होना।
   (ख) निम्नलिखित शब्दों के तीन-तीन पर्यायवाची शब्द लिखिए :
   नदी, विधाता, धरती, यात्री।
8. चित्रात्मक और काव्यात्मक वर्णनों के विशिष्ट नमूनों को पाठ से छाँटकर उनकी विशेषताएँ दर्शाइए।

जयशंकर प्रसाद

(1888-1937)

जयशंकर प्रसाद का जन्म काशी के सुविख्यात सुँघनी साहू परिवार में हुआ। उनके पिता देवीप्रसाद जी का निधन उनके बाल्यकाल में ही हो गया था । फलतः प्रसाद जी विद्यालयी शिक्षा केवल आठवीं कक्षा तक प्राप्त कर सके। किन्तु स्वाध्याय द्वारा उन्होंने संस्कृत, पाली, उर्दू और अंग्रेजी भाषाओं तथा साहित्य का गहन अध्ययन किया । इतिहास, दर्शन, धर्म शास्त्र और पुरातत्त्व के वे प्रकांड विद्वान थे ।

प्रसाद जी अन्यंत सौम्य, शांत एवं गंभीर प्रकृति के व्यक्ति थे । वे परनिंदा एवं आत्मस्तुति दोनों से सदा दूर रहते थे । सांसारिक विज्ञापन और यशोलिप्सा से तटस्थ रह कर वे अध्ययन और मनन में लीन रहते थे ।

प्रसाद जी बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार थे । वे मूलतः कवि थे, लेकिन उन्होंने नाटक, उपन्यास, कहानी, निबंध आदि अनेक साहित्यिक विधाओं में उच्चकोटि की रचनाओं का सृजन किया।

प्रसाद-साहित्य में राष्ट्रीय जागरण का स्वर प्रमुख है। संपूर्ण साहित्य में विशेषकर नाटकों में प्राचीन भारतीय संस्कृति के गौरव के माध्यम से 'प्रसाद' जी ने यह काम किया। उनकी कहानियों में भारतीय संस्कृति और जीवन मूल्यों की झलक मिलती है। उन्होंने मूलतः आदर्शवादी कहानियों की रचना की है, जिनमें ऐतिहासिक वातावरण का सजीव चित्रण हुआ है। कवि हृदय होने के कारण उनकी कहानियों में छायावाद की भावुकतापूर्ण कल्पना का अद्‌भुत समावेश है। उन्होंने सभी कहानियों में संस्कृतनिष्ठ भाषा का प्रयोग किया है । उनकी भाषा-शैली का उनके कई समकालीन एवं परवर्ती कहानीकारों पर इतना अधिक

प्रभाव पड़ा कि कहानी-साहित्य में "प्रसाद शैली" के नाम से एक पृथक् धारा विख्यात हो गई। उनकी प्रमुख रचनाएँ हैं :

नाटक : 'अजातशत्रु', 'स्कंदगुप्त', 'चंद्रगुप्त', 'राजश्री', 'ध्रुवस्वामिनी' आदि ।

उपन्यास : 'कंकाल', 'तितली', 'इरावती' (अपूर्ण)।

कहानी संग्रह : 'आँधी', 'इंद्रजाल', 'छाया', 'प्रतिध्वनि' और 'आकाशदीप'।

निबंध संग्रह : 'काव्य और कला तथा अन्य निबंध'।

कविताएँ : 'झरना', 'आँसू', 'लहर', 'कामायनी', 'कानन कुसुम', 'प्रेमपथिक'।

गुंडा कहानी अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों की अस्त-व्यस्त राजनीतिक एवं सामाजिक व्यवस्था पर आधारित है। नन्हकू सिंह शासक वर्ग में गुंडा के रूप में प्रख्यात है, लेकिन व्यक्तिगत सुख-दुःख की चिंता छोड़कर वह समाज के दलित-पीड़ित लोगों की सहायता में हमेशा तत्पर रहता है और अंत में असहाय और असुरक्षित राज-परिवार के सम्मान की रक्षा के लिए अपने जीवन की बलि दे देता है।

6. गुंडा

वह पचास वर्ष से ऊपर था। तब भी युवकों से अधिक बलिष्ठ और दृढ़ था। चमड़े पर झुर्रियाँ नहीं पड़ी थीं। वर्षा की झड़ी में, पूस की रातों की छाया में, कड़कती हुई जेठ की धूप में, नंगे शरीर घूमने में वह सुख मानता था। उसकी चढ़ी मूँछें, बिच्छू के डंक की तरह देखने वालों की आँखों में चुभती थीं। उसका साँवला रंग साँप की तरह चिकना और चमकीला था। उसकी नागपुरी धोती का लाल रेशमी किनारा दूर से भी ध्यान आकर्षित करता। कमर में बनारसी सेल्हे का फेंटा, जिसमें सीप की मूठ का बिछुआ खुँसा रहता था। उसके घुँघराले बालों पर सुनहले पत्ते के साफे का छोर उसकी चौड़ी पीठ पर फैला रहता। ऊँचे कंधे पर टिका हुआ चौड़ी धार का गँड़ासा, यह थी उसकी धज। पंजों के बल जब वह चलता, तो उसकी नसें चटाचट बोलती थीं। वह गुंडा था।

ईसा की अठारहवीं शताब्दी के अंतिम भाग में वही काशी नहीं रह गई थी, जिसमें उपनिषद् के अजातशत्रु की परिषद् में ब्रह्मविद्या सीखने के लिए विद्वान् ब्रह्मचारी आते थे। गौतम बुद्ध और शंकराचार्य के धर्म-दर्शन के वाद-विवाद कई शताब्दियों से लगातार मंदिरों और मठों के ध्वंस और तपस्वियों के वध के कारण, प्रायः बंद-से हो गए थे। यहाँ तक कि पवित्रता और छुआछूत में कट्टर वैष्णव धर्म भी उस विशृंखलता में, नवागंतुक धर्मोन्माद में अपनी असफलता देखकर काशी में अघोर रूप धारण कर रहा था। उसी समय समस्त न्याय और बुद्धिवाद को शस्त्र-बल के सामने झुकते देखकर, काशी के विच्छिन्न और निराश नागरिक जीवन ने, एक नवीन संप्रदाय की सृष्टि की, वीरता जिसका धर्म था। अपनी बात पर मिटना, सिंह-वृत्ति से जीविका ग्रहण करना, प्राण-भिक्षा माँगने वाले कायरों तथा चोट खाकर गिरे हुए प्रतिद्वंदी पर शस्त्र न उठाना, सताए हुए निर्बलों को सहायता देना और प्रत्येक क्षण

प्राणों को हथेली पर लिए घूमना उसका बाना था । उसे लोग काशी में गुंडा कहते थे ।

जीवन की किसी अलभ्य अभिलाषा से वंचित होकर जैसे प्रायः लोग विरक्त हो जाते हैं, ठीक उसी तरह किसी मानसिक चोट से घायल होकर एक प्रतिष्ठित जमींदार का पुत्र होने पर भी, नन्हकू सिंह गुंडा हो गया था । दोनों हाथों से उसने अपनी संपत्ति लुटाई। नन्हकू सिंह ने बहुत सा रुपया खर्च करके जैसा स्वाँग खेला था, उसे काशी वाले बहुत दिनों तक नहीं भूल सके । वसंत ऋतु में यह प्रहसनपूर्ण अभिनय खेलने के लिए उन दिनों प्रचुर धन, बल, निर्भीकता और उच्छृंखलता की आवश्यकता होती थी। एक बार नन्हकू सिंह ने भी एक पैर में नूपुर, एक हाथ में तोड़ा, एक आँख में काजल, एक कान में हज़ारों के मोती तथा दूसरे में फटे जूते का पल्ला लटकाकर, एक हाथ में जड़ाऊ मूठ की तलवार, दूसरा हाथ आभूषणों से लदी हुई अभिनय करनेवाली प्रेमिका के कंधे पर रखकर गाया था –

"कहीं बैंगनवाली मिले तो बुला देना ।"

प्रायः बनारस के बाहर की हरियालियों में, अच्छे पानी वाले कुओं पर, गंगा की धारा में मचलती हुई डोंगी पर; वह दिखलाई पड़ता था। कभी-कभी जुआखाने से निकलकर जब वह चौक में आ जाता, तो काशी की रँगीली वेश्याएँ मुसकराकर उसका स्वागत करतीं और उसके दृढ़ शरीर को सस्पृह देखतीं। वह तमोली की ही दुकान पर बैठकर उनके गीत सुनता, ऊपर कभी नहीं जाता था । जुए की जीत का रुपया मुट्ठियों में भरकर, उनकी खिड़की में वह इस तरह उछालता कि कभी-कभी समाजी लोग अपना सिर सहलाने लगते । तब वह ठठाकर हँस देता । जब कभी लोग कोठे के ऊपर चलने के लिए कहते, तो वह उदासी की साँस खींचकर चुप हो जाता ।

वह अभी वंशी के जुएखाने से निकला था। आज उसकी कौड़ी ने साथ न दिया। सोलह परियों के नृत्य में उसका मन न लगा। मन्नू तमोली की दुकान पर बैठते हुए उसने कहा – "आज सायत अच्छी नहीं रही, मन्नू।"

"क्यों मालिक ! चिंता किस बात की है । हम लोग किस दिन के लिए हैं। सब आप ही का तो है।"

"अरे बुद्धू ही रहे तुम । नन्हकू सिंह जिस दिन किसी से लेकर जुआ खेलने लगे, उसी दिन समझना, वह मर गए। तुम जानते नहीं कि मैं जुआ खेलने कब जाता हूँ । जब मेरे पास एक पैसा नहीं रहता, उस दिन नाल पर पहुँचते ही जिधर बड़ी ढेरी रहती है, उसी को बदता हूँ और फिर वही दाँव आता भी है। बाबा कीनाराम का यह वरदान है।"

"तब आज क्यों मालिक ?"

"पहला दाँव तो आया ही, फिर दो-चार बढ़ने पर सब निकल गया, तब भी लो, यह पाँच रुपए बचे हैं। एक रुपया तो पान के लिए रख लो । और चार दे दो मलूकी कथक को, कह दो कि दुलारी से गाने के लिए कह दे । हाँ, वही एक गीत – "बलम विदेस रहे ।"

नन्हकू की बात सुनते ही मलूकी, जो अभी गाँजे की चिलम पर रखने के लिए अंगारा चूर कर रहा था, घबराकर उठ खड़ा हुआ। वह सीढ़ियों पर दौड़ता हुआ चढ़ गया । चिलम को देखते ही ऊपर चढ़ा, इसीलिए उसे चोट भी लगी, पर नन्हकू की भृकुटी देखने की शक्ति उसमें कहाँ। उसे नन्हकू सिंह की वह मूर्ति न भूली थी जब इसी पान की दुकान पर जुएखाने से जीता हुआ, रुपए से भरा तोड़ा लिए वह बैठा था । नन्हकू ने पूछा – "यह किसकी बारात है ?"

"ठाकुर बोधी सिंह के लड़के की ।" – मन्नू के इतना कहते ही नन्हकू के ओठ फड़कने लगे। उसने कहा – "मन्नू ! यह नहीं हो सकता। आज इधर से बारात न जाएगी । बोधी सिंह हमसे निपट केर तब बारात इधर से ले जा सकेंगे।"

मन्नू ने कहा – "तब मालिक, मैं क्या करूँ?"

नन्हकू गँड़ासा कंधे पर से और ऊँचा करके मलूकी से बोला – "मलुकिया, देखता है, अभी जा ठाकुर से कह दे कि बाबू नन्हकू सिंह आज यहीं दाँव लगाने के लिए खड़े हैं। समझकर आवें, लड़के की बारात है।"

मलुकिया काँपता हुआ ठाकुर बोधी सिंह के पास गया । बोधी सिंह का नन्हकू से पॉच वर्ष से सामना नहीं हुआ है। किसी दिन नाल पर कुछ बातों में ही कहा-सुनी होकर, बीच-बचाव हो गया था । फिर सामना नहीं हो सका था । आज नन्हकू जान पर खेलकर अकेले खड़ा है। बोधी सिंह भी उस आन को समझते थे । उन्होंने मलूकी से कहा, "जा

बे, कह दे कि हमको क्या मालूम कि बाबू साहब वहाँ खड़े हैं। जब वह हैं हीं, तो दो समधी जाने का क्या काम है।''

बोधी सिंह लौट गए और मलूकी के कंधे पर तोड़ा लादकर बाजे के आगे नन्हकू सिंह बारात लेकर गए, ब्याह में जो कुछ लगा, खर्च किया। ब्याह कराकर तब दूसरे दिन इसी दुकान तक आकर रुक गए। लड़के को और उसकी बारात को उसके घर भेज दिया।

मलूकी को भी दस रुपया मिला था उस दिन। फिर नन्हकू सिंह की बात सुनकर बैठे रहना और यम को न्योता देना एक ही बात थी। उसने जाकर दुलारी से कहा – ''हम ठेका लगा रहे हैं, तुम गाओ, तब तक बल्लू सारंगीवाला पानी पीकर आता है।''

''बाप रे। कोई आफत आई है क्या बाबू साहब ? सलाम !'' – कहकर दुलारी ने खिड़की से मुसकराकर झाँका था कि नन्हकू सिंह उसके सलाम का जवाब देकर, दूसरे एक आने वाले को देखने लगे।

हाथ में हरौती की पतली-सी छड़ी, आँखों में सुरमा, मुँह में पान, मेंहदी लगी हुई लाल दाढ़ी, जिसकी सफेद जड़ें दिखलाई पड़ रही थीं, कुब्बेदार टोपी, छैकलिया अँगरखा और साथ में लेसदार परतले वाले दो सिपाही। कोई मौलवी साहब हैं। नन्हकू हँस पड़ा। नन्हकू की ओर बिना देखे ही मौलवी ने एक सिपाही से कहा – ''जाओ, दुलारी से कह दो कि आज रेजिडेंट साहब की कोठी पर मुजरा करना होगा, अभी चले। देखो, तब तक हम जानअली से कुछ इत्र ले रहे हैं।''

सिपाही ऊपर चढ़ रहा था। और मौलवी दूसरी ओर चले थे कि नन्हकू ने ललकार कर कहा – ''दुलारी ! हम कब तक यहाँ बैठे रहें ? क्या अभी सारंगिया नहीं आया ?''

दुलारी ने कहा – ''वाह बाबू साहब ! आप ही के लिए तो मैं यहाँ आ बैठी हूँ। सुनिए न ! आप तो कभी ऊपर . . . .'' – मौलवी जल उठा। उसने कड़ककर कहा – ''चौबदार ! अभी वह सुअर की बच्ची उतरी नहीं ? जाओ कोतवाल के पास मेरा नाम लेकर कहो कि मौलवी अलाउद्दीन कुबरा ने बुलाया है। आकर इसकी मरम्मत करे। देखता हूँ, जब से नवाबी गई, इन काफिरों की मस्ती बढ़ गई है।''

कुबरा मौलवी। बाप रे – तमोली अपनी दुकान सँभालने लगा। पास ही एक दुकान पर बैठकर ऊँघता हुआ बजाज चौंककर सिर में चोट

खा गया । इसी मौलवी ने तो महाराज चेतसिंह से साढ़े तीन सेर चींटी के सिर का तेल माँगा था । मौलवी अलाउद्दीन कुबरा । बाज़ार में हलचल मच गई। नन्हकू सिंह ने मन्नू सिंह से कहा – ''क्यों, चुपचाप बैठोगे नहीं ?'' दुलारी से कहा –''वहीं से बाई जी । इधर-उधर हिलने का काम नहीं । तुम गाओ । हमने ऐसे घसियारे बहुत से देखे हैं। अभी कल रमल के पाँसे फेंककर अधेला-अधेला माँगता था, आज चला रोब गाँठने ।''

अब कुबरा ने घूमकर उसकी ओर देख कर कहा – ''कौन है यह पाजी।''

''तुम्हारे चाचा बाबू नन्हकू सिंह।'' इसके साथ ही पूरा बनारसी झापड़ पड़ा । कुबरा का सिर घूम गया । सिपाही दूसरी ओर भाग चले और मौलवी साहब चौंधियाकर जानअली की दुकान पर लड़खड़ाते, गिरते-पड़ते किसी तरह पहुँच गए।

जानअली ने मौलवी से कहा–''मौलवी साहब ! भला आप भी उस गुंडे के मुँह लगने लगे । यह कहिए कि उसने गँड़ासा नहीं तोल दिया।'' कुबरा के मुँह से बोली नहीं निकल रही थी। –''बलम विदेस रहे''– गाना पूरा हुआ, कोई आया-गया नहीं। तब नन्हकू सिंह धीरे-धीरे टहलता हुआ दूसरी ओर चला गया । थोड़ी देर में एक डोली रेशमी कपड़े से ढकी हुई आई। साथ में एक चोबदार था । उसने दुलारी को राजमाता की आज्ञा सुनाई।

दुलारी चुपचाप डोली पर जा बैठी। डोली-धूल और संध्या-काल के धुएँ से भरी हुई बनारस की तंग गलियों से होकर शिवालय घाट की ओर चली ।

श्रावण का अंतिम सोमवार था । राजमाता पन्ना शिवालय में बैठकर पूजन कर रही थीं। दुलारी बाहर बैठी, कुछ अन्य गानेवालियों के साथ भजन गा रही थी। आरती हो जाने पर, फूलों की अंजलि बिखेर कर पन्ना ने भक्ति-भाव से देवता के चरणों में प्रणाम किया । फिर प्रसाद लेकर बाहर आते ही उन्होंने दुलारी को देखा । उसने खड़ी होकर हाथ जोड़ते हुए कहा – ''मैं पहले ही पहुँच जाती। क्या करूँ, वह कुबरा मौलवी निगोड़ा आकर रेजिडेंट की कोठी पर ले जाने लगा । घंटों इसी झंझट में बीत गया सरकार।''

"कुबरा मौलवी । जहाँ सुनती हूँ, उसी का नाम, सुना है कि उसने यहाँ भी आकर कुछ . . ." फिर न जाने क्या सोचकर बात बदलते हुए पन्ना ने कहा – "हाँ, तब फिर क्या हुआ? तुम कैसे यहाँ आ सकीं?"

"बाबू नन्हकू सिंह उधर से आ गए। मैंने कहा – सरकार की पूजा पर मुझे भजन गाने को जाना है और यह जाने नहीं दे रहा है। उन्होंने मौलवी को ऐसा झापड़ लगाया कि सबकी हेकड़ी भूल गई और तब जाकर मुझे किसी तरह यहाँ आने की छुट्टी मिली।"

"कौन बाबू नन्हकू सिंह?"

दुलारी ने सिर नीचा करके कहा – "अरे, क्या सरकार को नहीं मालूम ? बाबू निरंजन सिंह के लड़के। उस दिन जब मैं बहुत छोटी थी, आपकी बारी में झूला झूल रही थी। जब नवाब का हाथी बिगड़कर आ गया था, बाबू निरंजन सिंह के कुँवर ने ही तो उस दिन हम लोगों की रक्षा की थी।"

राजमाता का मुख उस प्राचीन घटना को स्मरण करके न जाने क्यों विवर्ण हो गया । फिर अपने को सँभालकर उन्होंने पूछा – "तो बाबू नन्हकू सिंह उधर कैसे आ गए?"

दुलारी ने मुसकराकर सिर नीचा कर लिया। दुलारी राजमाता पन्ना के पिता की जमींदारी में रहने वाली वेश्या की लड़की थी। उसके साथ ही कितनी बार झूले-हिंडोले अपने बचपन में पन्ना झूल चुकी थी। वह बचपन से गाने में सुरीली थी। सुंदरी होने पर चंचल भी थी । पन्ना जब काशीराज की माता थी, तब दुलारी काशी की प्रसिद्ध गानेवाली थी। राजमहल में उसका गाना-बजाना हुआ ही करता । महाराज बलवंत सिंह के समय से ही संगीत पन्ना के जीवन का आवश्यक अंग था। हाँ, तब प्रेम, दुःख और दर्द भरी विरह कल्पना के गीत की ओर अधिक रुचि थी। अब सात्विक भावपूर्ण भजन होता था । राजमाता पन्ना का वैधव्य से दीप्त शांत मुख-मंडल कुछ मलीन हो गया ।

बड़ी रानी की सापत्न्य ज्वाला बलवंत सिंह के मर जाने पर भी नहीं बुझी। अंतःपुर कलह का रंगमंच बना रहता । इसी से प्रायः पन्ना काशी के राजमंदिर में आकर पूजा-पाठ में अपना मन लगाती। रामनगर में उसे चैन नहीं मिलता । नई रानी होने के कारण बलवंत सिंह की

प्रेयसी होने का गौरव तो उसे था ही, साथ में पुत्र उत्पन्न करने का सौभाग्य भी मिला, फिर भी असवर्णता का सामाजिक दोष उसके हृदय को व्यथित किया करता। उसे अपने ब्याह की आरंभिक चर्चा का स्मरण हो आया।

छोटे-से मंच पर बैठी, गंगा की उमड़ती हुई धारा को पन्ना अन्य-मनस्क होकर देखने लगी। उस बात को, जो अतीत में एक बार, हाथ से अनजाने में खिसक जाने वाली वस्तु की तरह लुप्त हो गई हो, सोचने का कोई कारण नहीं।उससे कुछ बनता-बिगड़ता भी नहीं, परंतु मानव स्वभाव हिसाब रखने की प्रथानुसार कभी-कभी कह ही बैठता है, ''कि यदि वह बात हो गई होती तो ?'' ठीक उसी तरह पन्ना भी राजा बलवंत सिंह द्वारा बलपूर्वक रानी बनाई जाने के पहले की एक संभावना को सोचने लगी थी, सो भी बाबू नन्हकू सिंह का नाम सुन लेने पर । गेंदा मुँह लगी दासी थी । वह पन्ना के साथ उसी दिन से है, जिस दिन से पन्ना बलवंत सिंह की प्रेयसी हुई। राज्य भर का अनुसंधान उसी के द्वारा मिला करता और उसे न जाने कितनी जानकारी भी थी । उसने दुलारी का रंग उखाड़ने के लिए कुछ कहना आवश्यक समझा ।

''महारानी ! नन्हकू सिंह अपनी सब जमींदारी स्वाँग, भैंसों की लड़ाई, घुड़दौड़ और गाने-बजाने में उड़ाकर अब डाकू हो गया है। जितने ख़ून होते हैं, सबमें उसी का हाथ रहता है। जितनी . . . '' उसे रोककर दुलारी ने कहा–''यह झूठ है । बाबू साहब के जैसा धर्मात्मा तो कोई है ही नहीं। कितनी विधवाएँ उनकी दी हुई धोती से अपना तन ढकती हैं, कितनी लड़कियों की ब्याह-शादी होती है, कितने सताए हुए लोगों की उनके द्वारा रक्षा होती है।''

रानी पन्ना के हृदय में एक तरलता उद्वेलित हुई । उन्होंने हँस कर कहा–''दुलारी, वे तेरे यहाँ आते है न ? इसी से तू उनकी बड़ाई...''

''नहीं सरकार।शपथ खाकर कह सकती हूँ कि बाबू नन्हकू सिंह ने आज तक कभी मेरे कोठे पर पैर भी नहीं रखा ।''

राजमाता न जाने क्यों इस अद्भुत व्यक्ति को समझने के लिए चंचल हो उठी थीं। तब भी उसने दुलारी को आगे कुछ न कहने के लिए तीखी दृष्टि से देखा । वह चुप हो गई। पहले पहर की शहनाई बजने

लगी। दुलारी छुट्टी माँगकर डोली पर बैठ गई। तब गेंदा ने कहा– "सरकार ! आजकल नगर की दशा बड़ी बुरी है। दिन-दहाड़े लोग लूट लिए जाते हैं। सैकड़ों जगह नाल पर जुए में लोग अपना सर्वस्व गँवाते हैं। बच्चे फुसलाए जाते हैं। गलियों में लाठियों और छुरे चलने के लिए टेढ़ी भौहें कारण बन जाती हैं। उधर रेजिडेंट साहब से महाराज की अनबन चल रही है।" राजमाता चुप रहीं।

दूसरे दिन राजा चेतसिंह के पास रेजिडेंट मार्कहेम की चिट्ठी आई, जिसमें नगर की दुर्व्यवस्था की कड़ी आलोचना थी। डाकुओं और गुंडों को पकड़ने के लिये उन पर कड़ा नियंत्रण रखने की सम्मति भी थी। कुबरा मौलवी वाली घटना का उल्लेख था । उधर हेस्टिंग्स के आने की भी सूचना थी । शिवालय घाट और रामनगर में हलचल मच गई। कोतवाल हिम्मत सिंह पागल की तरह जिसके हाथ में लाठी, लोहांग, गँड़ासा, बिछुआ और करौली देखते उसी को पकड़ने लगे।

एक दिन नन्हकू सिंह सुम्भा के नाले के संगम पर, ऊँचे से टीले की घनी हरियाली में अपने चुने हुए साथियों के साथ दूधिया छान रहे थे। गंगा में उनकी पतली डोंगी बड़ की जटा से बँधी थी। कथकों का गाना हो रहा था। चार उलाँकी इक्के कसे-कसाए खड़े थे।

नन्हकू सिंह ने अकस्मात् कहा – "मलूकी ! गाना जमता नहीं है। उलाँकी पर बैठकर जाओ, दुलारी को बुला लाओ ।" मलूकी वहाँ मजीरा बजा रहा था । वह दौड़कर इक्के पर जा बैठा, आज नन्हकू सिंह का मन उखड़ा था । बूटी कई बार छानने पर भी नशा नहीं। एक घंटे में दुलारी सामने आ गई। उसने मुसकराकर पूछा – "क्या हुक्म है बाबू साहब ?"

"दुलारी ! आज गाना सुनने का मन कर रहा है ।"

"इस जंगल में क्यों ?" – उसने सशंक हँसकर कुछ अभिप्राय से पूछा ।

"तुम किसी तरह का खटका न करो", – नन्हकू सिंह ने हँस कर कहा ।

"यह तो मैं उस दिन महारानी से भी कह आई।"

"क्या, किससे ?"

"राजमाता पन्ना देवी से।" – फिर उस दिन गाना नहीं जमा ।

दुलारी ने आश्चर्य से देखा कि बातों में नन्हकू सिंह की आँखें तर हो जाती हैं। गाना-बजाना समाप्त हो गया था । वर्षा की रात में झिल्लियों का स्वर उस झुरमुट में गूँज रहा था । मंदिर के समीप ही छोटे-से कमरे में नन्हकू सिंह चिंता में निमग्न बैठा था । आँखों में नींद नहीं और सब लोग तो सोने लगे थे। दुलारी जाग रही थी। वह भी कुछ सोच रही थी। आज, उसे अपने को रोकने के लिये कठिन प्रयत्न करना पड़ रहा था, किन्तु असफल होकर वह उठी और नन्हकू सिंह के समीप धीरे-धीरे चली आई। कुछ आहट पाते ही चौंककर उन्होंने पास ही पड़ी हुई तलवार उठा ली । तब तक हँसकर दुलारी ने कहा – "बाबू साहब, यह क्या ? स्त्रियों पर भी तलवार चलाई जाती है?"

छोटे-से दीपक के प्रकाश में रमणी का मुख देखकर नन्हकू हँस पड़ा। उसने कहा– "क्यों बाई जी! क्या इसी समय आने की पड़ी है? मौलवी ने फिर बुलाया है क्या?" दुलारी नन्हकू के पास बैठ गई। नन्हकू ने कहा–

"क्या तुमको डर लग रहा है ?"

"नहीं, मैं कुछ पूछने आई हूँ।"

"क्या ?"

"क्या . . . यही कि . . . . कभी तुम्हारे हृदय में . . . . ।"

"उसे न पूछो दुलारी । हृदय को बेकार ही तो समझकर उसे हाथ में लिए फिर रहा हूँ । कोई कुछ कर देता-कुचलता-चीरता-उछलता। मर जाने के लिए सब कुछ तो करता हूँ, पर मर नहीं पाता ।"

"मरने के लिए भी कहीं खोजने जाना पड़ता है। आपको काशी का हाल क्या मालूम ! न मालूम घड़ी भर में क्या हो जाए ? उलट-पलट होने वाला है क्या, बनारस की गलियाँ जैसे काटने दौड़ती हैं।"

"कोई नई बात इधर हुई है क्या ?"

"कोई हेस्टिंग्स साहब आया है। सुना है कि उसने शिवालय घाट पर तिलंगों की कंपनी का पहरा बैठा दिया है । राजा चेतसिंह और राजमाता पन्ना वहीं हैं। कोई-कोई कहता है कि उनको पकड़कर कलकत्ता भेजने . . ."

"क्या पन्ना भी . . . . रतवास भी वहीं है ।" –नन्हकू अधीर

हो उठा था।

"क्यों बाबू साहब, आज रानी पन्ना का नाम सुनकर आपकी आँखों में आँसू क्यों आ गए ?"

सहसा नन्हकू का मुख भयानक हो उठा। उसने कहा – "चुप रहो, तुम उसको जानकर क्या करोगी।" वह उठ खड़ा हुआ। उद्‌विग्न की तरह न जाने क्या खोजने लगा। फिर स्थिर होकर उसने कहा– "दुलारी ! जीवन में आज यह पहला ही दिन है कि एकांत रात में एक स्त्री मेरे पलंग पर आकर बैठ गई है। मैं चिरकुमार अपनी एक प्रतिज्ञा का निर्वाह करने के लिए सैकड़ों असत्य, अपराध करता फिरता रहा हूँ क्यों ? तुम जानती हो ? मैं स्त्रियों का घोर विद्रोही हूँ। और पन्ना . . . किन्तु उसका क्या अपराध? उसे पकड़कर गोरे कलकत्ते भेज देंगे। नहीं ...।"

नन्हकू सिंह उन्मत्त हो उठा था। दुलारी ने देखा, नन्हकू अंधकार में ही वटवृक्ष के नीचे पहुँचा और गंगा की उमड़ती हुई धारा में डोंगी खोल दी-उसी घने अंधकार में, दुलारी का हृदय काँप उठा।

16 अगस्त, सन् 1781 को काशी डाँवाडोल हो रही थी। शिवालय घाट में राजा चेत सिंह लेफ्टिनेंट इस्टाकर के पहरे में थे। नगर में आतंक था। दुकानें बंद थीं। घरों में बच्चे अपनी माँ से पूछते थे –"माँ, आज हलुएवाला नहीं आया।" वह कहती – "चुप बेटे।" – सड़कें सूनी पड़ी थीं। तिलंगों की कंपनी के आगे-आगे कुबरा मौलवी कभी-कभी आता-जाता दिखलाई पड़ता था। उस समय खुली हुई खिड़कियाँ भी बंद हो जाती थीं। भय और सन्नाटे का राज्य था। चौक में चिथरू सिंह की हवेली अपने भीतर काशी की वीरता को बंदी किए कोतवाली का अभिनय कर रही थी। इसी समय किसी ने पुकारा – " हिम्मत सिंह।"

खिड़की में से सिर निकाल कर हिम्मत सिंह ने पूछा –"कौन ?"

"बाबू नन्हकू सिंह।"

"अच्छा, तुम अब तक बाहर ही रहे?"

"पागल ! राजा कैद हो गए हैं। छोड़ दो इन सब बहादुरों को। हम एक बार इनको लेकर शिवालय घाट पर जाएँ।"

"ठहरो" – कहकर हिम्मत सिंह ने कुछ आज्ञा दी। सिपाही बाहर निकले। नन्हकू ने कहा – "नमकहरामी। चूड़ियाँ पहन लो।"

लोगों के देखते-देखते नन्हकू सिंह चला गया । कोतवाली के सामने फिर सन्नाटा हो गया ।

नन्हकू में उन्माद था । उसके थोड़े-से साथी उसकी आज्ञा पर जान देने के लिए तुले थे । वह नहीं जानता था कि राजा चेतसिंह का रुक्का राजनीतिक अपराध मचाने के लिए भेज दिया। इधर अपनी डोंगी लेकर शिवालय की खिड़की के नीचे धारा काटता हुआ पहुँचा । किसी तरह निकले हुए पत्थर में रस्सी अटकाकर उस चंचल डोंगी को उसने स्थिर किया और बंदर की तरह उछलकर खिड़की के भीतर हो रहा। उस समय वहाँ राजमाता पन्ना और युवक राजा चेतसिंह से बाबू मनियार सिंह कह रहे थे — "आपके यहाँ रहने से, हम लोग क्या करें? यह समझ में नहीं आता । पूजा-पाठ समाप्त करके रामनगर चली गई होतीं, तो यह . . ."

तेजस्विनी पन्ना ने कहा — "अब मैं रामनगर कैसे चली जाऊँ?"

मनियार सिंह दुःखी होकर बोले — "कैसे बताऊँ? मेरे सिपाही तो बंदी हैं?"

इतने में फाटक पर कोलाहल मचा । राज-परिवार अपनी मंत्रणा में डूबा था कि नन्हकू सिंह का आना उन्हें मालूम हुआ । सामने का द्वार बंद था । नन्हकू सिंह ने एक बार गंगा की धारा को देखा — उसमें एक नाव घाट पर लगने के लिए लहरों से लड़ रही थी। वह प्रसन्न हो उठा। इसकी प्रतीक्षा में वह रुका था। उसने जैसे सबको सचेत करते हुए कहा — "महारानी कहाँ है?"

सबने घूमकर देखा—एक अपरिचित वीरमूर्ति ! शस्त्रों से लदा हुआ पूरा देव !

चेतसिंह ने पूछा — "तुम कौन हो ?"

"राज-परिवार का एक बिना दाम का सेवक ।"

पन्ना के मुँह से हलकी-सी एक साँस निकलकर रह गई। उसने पहचान लिया । इतने वर्षों के बाद ! वही नन्हकू सिंह !

मनियार सिंह ने पूछा — "तुम क्या कर सकते हो ?"

"मैं मर सकता हूँ। पहले महारानी को डोंगी पर बिठाइए। नीचे दूसरी डोंगी पर अच्छे मल्लाह हैं। फिर बात कीजिए।" मनियार सिंह ने देखा, जनानी ड्योढ़ी का दारोगा राजा की एक डोंगी पर चार मल्लाहों

के साथ खिड़की से नाव सटाकर प्रतीक्षा में है। उन्होंने पन्ना से कहा– "चलिए मैं साथ चलता हूँ।"

"मेरे . . . . "चेतसिंह को देखकर, पुत्र-वत्सला ने संकेत से एक प्रश्न किया। उसका उत्तर किसी के पास न था। मनियार सिंह ने कहा– " तब मैं यहीं ?" नन्हकू ने हँसकर कहा – "मेरे मालिक आप नाव पर बैठें। जब तक राजा भी नाव पर न बैठ जाएँगे, तब तक सत्रह गोली खाकर भी नन्हकू सिंह जीवित रहने की प्रतिज्ञा करता है।"

पन्ना ने नन्हकू को देखा। एक क्षण के लिए चारों आँखें मिलीं, जिनमें जन्म-जन्म का विश्वास ज्योति की तरह जल रहा था। फाटक बलपूर्वक खोला जा रहा था। नन्हकू ने उन्मत्त होकर कहा – "मालिक, जल्दी कीजिए।"

दूसरे क्षण पन्ना डोंगी पर थी और नन्हकू सिंह फाटक पर इस्टा-कर के साथ। चेतराम ने आकर एक चिट्ठी मनियार सिंह के हाथ में दी। लेफ्टिनेंट ने कहा – "आपके आदमी गड़बड़ मचा रहे हैं। अब मैं अपने सिपाहियों को गोली चलाने से नहीं रोक सकता।"

"मेरे सिपाही यहाँ कहाँ हैं साहब ?" –मनियार सिंह ने हँसकर कहा। बाहर कोलाहल बढ़ने लगा था।

चेतराम ने कहा – "पहले चेतसिंह को कैद कीजिए।"

"कौन ऐसी हिम्मत करता है?" – कड़ककर कहते हुए बाबू मनियार सिंह ने तलवार खींच ली। अभी बात पूरी न हो सकी थी कि कुबरा मौलवी वहाँ पहुँचा। यहाँ मौलवी साहब की कलम नहीं चल सकती थी और न ये बाहर ही जा सकते थे। उन्होंने कहा – 'देखते क्या हो चेतराम।"

चेतराम ने राजा के ऊपर हाथ रखा ही था कि नन्हकू के सधे हुए हाथ ने उसकी भुजा उड़ा दी। इस्टाकर आगे बढ़े, मौलवी साहब चिल्लाने लगे। नन्हकू सिंह ने देखते-देखते इस्टाकर और उसके कई साथियों को धराशायी किया, फिर मौलवी साहब कैसे बचते ?

नन्हकू सिंह ने कहा –"क्यों, उस दिन के झापड़ ने तुमको समझाया नहीं? ले पाजी।" कहकर ऐसा साफ जनेवा मारा कि कुबरा ढेर हो गया। कुछ ही क्षणों में यह भीषण घटना हो गई, जिसके लिए अभी कोई प्रस्तुत न था।

नन्हकू सिंह ने ललकार कर चेतसिंह से कहा – "आप देखते क्या हैं? उतरिए डोंगी पर।" उसके घावों से रक्त के फव्वारे छूट रहे थे। उधर फाटक से तिलंगे भीतर आने लगे थे। चेतसिंह ने खिड़की से उतरते हुए देखा कि बीसों तिलंगों की संगीनों में वह अविचल खड़ा होकर तलवार चला रहा है। नन्हकू के चट्टान सदृश शरीर से गैरिक की तरह रक्त की धारा बह रही है। गुंडे का एक-एक अंग कटकर वहीं गिरने लगा।

वह काशी का गुंडा था।

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक ने नन्हकू सिंह का जो रूप-स्वरूप अंकित किया है उसे केवल एक वाक्य में प्रस्तुत कीजिए।
2. प्राचीन काशी और अठारहवीं शताब्दी के अंत की काशी में लेखक ने क्या अंतर बताया है ? यह विवरण कथानक से किस प्रकार संबंधित है और उसे आगे बढ़ाने में किस प्रकार सहायक है ?
3. नन्हकू सिंह किन विषम परिस्थितियों में गुंडा बनने को विवश हुआ ? इस पाठ से संकेत ग्रहण करते हुए वर्णन कीजिए।
4. "बोधी सिंह लौट गए और मलूकी के कंधे पर तोड़ा लादकर बाजे के आगे नन्हकू सिंह बारात लेकर गए, ब्याह में जो कुछ लगा, खर्च किया।"
   उपर्युक्त वाक्य से बोधी सिंह की चतुराई और नन्हकू सिंह की उदारता किस प्रकार व्यक्त होती है?
5. 'कुबरा मौलवी! जहाँ सुनती हूँ, उसी का नाम, सुना है कि उसने यहाँ भी आकर कुछ . . . " फिर न जाने क्या सोचकर, बात बदलते हुए पन्ना ने कहा, "हाँ, तब फिर क्या हुआ?"
   उक्त पंक्तियों से राजमाता पन्ना की किस मानसिक दशा का संकेत मिलता है?
6. राजमाता का मुख किस घटना का स्मरण करके विवर्ण हो गया ? इस कहानी से प्राप्त संकेतों के आधार पर पूरी घटना का वर्णन कीजिए।
7. राजमाता और दुलारी में क्या संबंध थे ? दोनों में हुई बातों का सारांश अपने शब्दों में लिखिए।
8. बाबू नन्हकू सिंह के चरित्र को गुंडे के रूप में प्रस्तुत करने में और उसे महिमा

मंडित बनाने में कहानी के किन पात्रों और घटनाओं का योगदान है ?

9. कहानी के किन्हीं दस विशिष्ट प्रयोगों का चयन कीजिए।
जैसे गँड़ासा तोलना, खटका करना ।

10. इस कहानी के भावुकतापूर्ण स्थलों का चयन कीजिए और बताइए कि उनसे कहानी में क्या विशेषताएँ आ गई हैं?

11. 'प्रसाद जी ने मुख्य रूप से आदर्शवादी कहानियों की रचना की है जिनमे ऐतिहासिक वातावरण के सजीव चित्रण की ओर पूरा-पूरा ध्यान दिया है।'
उक्त कथन के संदर्भ में इस कहानी की समीक्षा कीजिए।

रामवृक्ष बेनीपुरी

(1902–68)

रामवृक्ष बेनीपुरी का जन्म बिहार के मुजफ्फर नगर जिले के बेनीपुर नामक ग्राम में हुआ था। बचपन में ही उनके माता-पिता का निधन हो गया था। उन्होंने कष्ट सहकर मैट्रिक तक शिक्षा प्राप्त की। 1920 ई. में गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन प्रारंभ होने पर वे अध्ययन छोड़कर राष्ट्रसेवा में लग गए। राष्ट्रीय स्वतंत्रता-संग्राम में भाग लेने के कारण उनको दस बार जेल जाना पड़ा।

उनके जीवन में राजनीति, साहित्य और संस्कृति की त्रिवेणी प्रवाहित है। उनका साहित्य गहन अनुभूतियों और उच्च कल्पनाओं का स्पष्ट प्रतिबिंब उपस्थित करता है। उनकी भाषा ओजपूर्ण, रोचक और सशक्त है।

बेनीपुरी 15 वर्ष की आयु से ही पत्र-पत्रिकाओं में लेख आदि लिखने लगे थे। उन्होंने 'तरुण भारत', 'किसान', 'मित्र', 'बालक', 'युवक', 'योगी', 'जनता', 'जनवाणी', 'नई धारा' आदि अनेक साप्ताहिक तथा मासिक पत्रिकाओं का सफलतापूर्वक संपादन कर एक सुयोग्य पत्रकार एवं लोकप्रिय संपादक का यश अर्जित किया।

उपन्यास, नाटक, कहानी, यात्रावृत्त, संस्मरण, रेखाचित्र, निबंध आदि सभी गद्य-विधाओं में बेनीपुरी ने रचना की। उनकी कुछ रचनाओं का प्रकाशन बेनीपुरी-ग्रंथावली नाम से दो भागों में हुआ है। उनके प्रसिद्ध ग्रंथ हैं: 'पतितों के देश में' (उपन्यास), 'चिता के फूल' (कहानी), 'माटी की मूरतें' (रेखाचित्र), 'अंबपाली' (नाटक), 'गेहूँ और गुलाब' (निबंध और रेखाचित्र), 'पैरों में पंख बाँधकर' (यात्रा वृत्तांत), 'जंजीरें और दीवारें' (संस्मरण)।

प्रस्तुत पाठ में लेखक ने भारत में नई संस्कृति के विकास की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया है। उसने संस्कृति को समाज रूपी वृक्ष का फूल माना है और नए समाज की हर विकास योजना को अधूरा माना है जिसमें नई संस्कृति के लिए स्थान नही है। इस नई संस्कृति के आधार तत्त्व होंगे – स्वतंत्रता, समता और मानवता के आधार पर समाजिक जीवन का पुनर्गठन, सौन्दर्य और आनंद का पूर्ण विकास। इस संस्कृति के निर्माण में लेखकों, कवियों और कलाकारों का विशेष गोगदान अपेक्षित है।

7. नई संस्कृति की ओर

हिन्दुस्तान आजाद हो गया! हिन्दुस्तान का ध्यान एक नए समाज के निर्माण की ओर केन्द्रित हो रहा है। यह नया समाज कैसा हो – उसका मूल आधार कैसा हो, उसका विकास किस प्रकार किया जाए – हिन्दुस्तान का हर देशभक्त इन प्रश्नों पर सोच-विचार कर रहा है।

समाज को अगर एक वृक्ष मान लिया जाए, तो अर्थनीति उसकी जड़ है, राजनीति आधार, विज्ञान आदि उसके तने हैं और संस्कृति उसके फूल ! इसलिए नए समाज की अर्थनीति या राजनीति आदि पर ही हमें ध्यान देना नहीं है, बल्कि उसकी संस्कृति की ओर सबसे अधिक ध्यान देना है, क्योंकि मूल और तने की सार्थकता तो उसके फूल में ही है।

फिर इन तीनों का संबंध परस्पर इतना गहरा है कि आप इन्हें अलग-अलग कर भी नहीं सकते। नई अर्थनीति और राजनीति के साथ एक नई संस्कृति का विकास हमारी आँखों के सामने हो रहा है – भले ही हम उसे देख न पाएँ या उसकी ओर से अपनी आँखें मूँद लें।

अन्य क्षेत्रों में हमारी पंच-वार्षिक योजनाएँ आ रही हैं, किंतु क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है कि संस्कृति के विकास में प्रगति देने के लिए एक भी व्यापक योजना हमारे समाने नहीं आ रही है ?

गत पचास वर्षों के राजनीतिक-आर्थिक संघर्षों ने हमारे दिमाग़ को इतना भोथरा बना दिया है कि संस्कृति की सुकुमार दुनिया हमारी पथराई आँखों के सामने आकर भी नहीं आ पाती।

गेहूँ हमारी आँखों पर इस कदर छाया हुआ है कि गुलाब को हम देखकर भी नहीं देख पाते। गेहूँ के सवाल को हल कीजिए, और जरूर हल कीजिए, किन्तु किसलिए ? आदमी सिर्फ चारा या दाना खाने वाला जानवर नहीं है। गेहूँ तक आदमी और जानवर में फर्क नहीं है–आदमी

को आदमी बनाया गुलाब ने।

समाज की सारी साधनाओं की परिपाटी उसकी संस्कृति में है। जड़ में खाद-पानी दीजिए, तनों की रक्षा कीजिए, किन्तु नजर रखिए फल पर, फूल पर, गुलाब पर, संस्कृति पर !

नए समाज की वह हर नई योजना अधूरी है, जिसमें नई संस्कृति के लिए स्थान नहीं।

* * *

''सूरज डूबने जा रहा था, उसने कहा—कौन मेरे पीछे इस संसार को आलोक देगा ?

चाँद थे, सितारे थे— सब चुप रहे। छोटा-सा मिट्टी का दीया ! उसने बढ़कर कहा—देवता, यह भारी बोझ है मेरे दुर्बल कंधों पर !''

कविगुरु रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कविता की यह एक कड़ी है।

जब राजनीतिज्ञ, अर्थशास्त्रज्ञ दूसरी बड़ी-बड़ी योजनाओं में लगे हैं, ओ कलाकारो, चलो, हम अपनी परिमित शक्ति से इस क्षेत्र में कुछ काम कर दिखाएँ! आखिर यह क्षेत्र भी तो हमारा ही है। गुलाब की खेती के माली तो हम ही हैं, फूलों के संसार के भौंरे तो हम ही हैं। हम न करेंगे, तो करेगा कौन ?

हमारी यह गुलाब की दुनिया, फूलों की दुनिया—रंगों की दुनिया, सुगंधों की दुनिया— इतनी सुकुमार, इतनी नाजुक दुनिया है कि कहीं अर्थशास्त्रियों के हथौड़े, राजनीतिज्ञों के कुल्हाड़े उसका सर्वनाश न कर दें, या प्रेमचंद के शब्दों में 'रक्षा में हत्या' न हो जाए ! इसलिए हमें ही यह करना है, उन्हें कुछ दूर-दूर ही रखना है।

नई संस्कृति—नए समाज के लिए नई संस्कृति! किंतु इसका मतलब यह नहीं कि हम पुरानी संस्कृति के निंदक या शत्रु हैं। पुरानी संस्कृति की सरजमीन पर ही तो नई संस्कृति की अट्टालिका खड़ी करनी है हमें ! पुरानी संस्कृति से हम प्रेरणा लेंगे, पाठ लेंगे। वह हमारी विरासत है, हम उसे क्यों छोड़ेंगे?

किन्तु पुरानी संस्कृति नष्ट हो रही है, क्योंकि उसमें सड़न आ गई है घुन लगा हुआ है। इसलिए नई संस्कृति की रूपरेखा नई होगी ही, नए साधनों को अपनाने से भी हम न हिचकेंगे।

हमारा उद्देश्य होगा—संस्कृति और जीवन के सांस्कृतिक पहलू

का इस प्रकार विकास करना कि हमारा सामाजिक जीवन स्वतंत्रता, समता और मानवता के आधार पर पुनः संगठित हो और वह सौन्दर्य एवं आनंद को पूर्ण रूप से विकसित कर सके।

हाँ, स्वतंत्रता, समता, मानवता ! नई संस्कृति के आधार तो यही हो सकते हैं। किन्तु इसका अर्थ हम सिर्फ राजनीतिक और आर्थिक अर्थों में नहीं लगाते। तीसरा शब्द मानवता हमारे उद्देश्य को स्पष्ट और पुष्ट कर देता है। हम सारी दासताओं से, सारी विषमताओं से मानवों को मुक्त कर उनके परस्पर के संबंध को विशुद्ध मानवता पर प्रतिष्ठित करना चाहते हैं। क्योंकि हम मानते हैं कि तभी आदमी अपने जीवन में सौन्दर्य और आनंद की उपलब्धि कर पाएगा।

सौन्दर्य! आनंद! नई संस्कृति को इसी ओर चलना है, बढ़ना है! आज के समाज में कुरूपता ही कुरूपता है, पीड़ाओ की विविधता है, बहुलता है। हम इसे सुंदर बनाएँगे—हम इसे सुखी बनाएँगे। लेखकों को, कवियों को, पत्रकारों को हम इकट्ठा करेंगे ताकि वे परस्पर विचार-विनिमय करके जनता के जीवन के अभावों और अभागों का सही चित्रण करें और साहित्य को उस पथ से ले चलें जिसके द्वारा जनता स्वतंत्र और पूर्ण जीवन का उपभोग कर सके।

इतना ही नहीं, जो कलाकार नाटक, संगीत, नृत्य और चित्रकारी में लगे हैं, उन्हें भी एकत्र करेंगे और उन्हें प्रोत्साहित करेंगे, ताकि वे अपनी कलाकृतियों में जनता की इच्छाओं और आकांक्षाओं को प्रतिफलित होने दें और जीवन को सौन्दर्यमय बनाकर उसे आनंद से परिपूरित करें।

इस तरह हम उन सभी कलाकारों का आह्वान कर रहे हैं जो अपनी लेखनी, कूँची, वाणी या यंत्रों द्वारा समाज को सत्यं-शिवं-सुंदरम् की ओर ले जाने में लगे हैं, किन्तु एक व्यापक संगठन नहीं होने के कारण, जिनकी साधनाएँ इच्छित फल नहीं दे पा रही हैं।

इनका संगठन करके हम शहरों और गाँवों में ऐसे सांस्कृतिक केंद्र खोलना चाहते हैं, जिनमें उनकी कलाकृतियों का प्रदर्शन हो सके और जहाँ से नई संस्कृति का संदेश भिन्न-भिन्न साधनों द्वारा हम देश के कोने-कोने में फैला सकें।

* * *

हम बार-बार जनता पर ज़ोर दे रहे हैं, क्योंकि हमने देखा है और दु:ख के साथ अनुभव किया है कि आज की संस्कृति कुछ अभिजात्य लोगों तक ही सीमित और परिमित है।

नया समाज जनता का समाज होगा, नई संस्कृति को भी जनता की संस्कृति होनी है।

नए समाज का भविष्य महान् है! नई संस्कृति का भविष्य महान् है!

अब तक की संस्कृति मानवता के सैकड़ों में एक का भी सही प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती थी, यह सौ में सौ का प्रतिनिधित्व करेगी, यह कितनी बड़ी चीज़ होगी—कल्पना कीजिए !

कितनी बड़ी चीज़, कितनी रंग-बिरंगी चीज़ !

सौ में सौ की इच्छा, आकांक्षा, हर्ष-उल्लास, मिलन-विरह, शौर्य-बलिदान, दया-क्रोध, पीर-रुदन का वह चित्रण और उनकी ही कलम या कूँची, वाणी या यंत्र द्वारा !

सदियों से अवरुद्ध निर्झरिणी जब यकायक शैलशृंग से फूट पड़ेगी, युगों से पिंजरबद्ध विहगी जन-वन-विटपी का फुनगी पर, पर खोलते हुए कलरव कर उठेगी।

प्रश्न-अभ्यास

1. प्रस्तुत पाठ में लेखक ने किस प्रकार के भारतीय समाज की अपेक्षा की है ?
2. समाज-वृक्ष के रूपक को स्पष्ट कीजिए।
3. 'सांस्कृतिक उत्थान के बिना आर्थिक विकास और वैज्ञानिक प्रगति के होने पर भी हमारा विकास अधूरा रह जाएगा,' इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।
4. सांस्कृतिक उत्थान के लिए लेखक कलाकारों को ही उपयुक्त क्यों समझता है?
5. लेखक ने पुरानी और नई संस्कृति में क्या सामंजस्य स्थापित किया है ?
6. नई संस्कृति के किन विधायक तत्त्वों की ओर लेखक ने संकेत किया है ?
7. 'नए समाज की वह हर नई योजना अधूरी है, जिसमें नई संस्कृति के लिए स्थान नहीं।' आशय स्पष्ट कीजिए।

8. जनता स्वतंत्र और पूर्ण जीवन का उपयोग कर सके, इसके लिए लेखक ने क्या उपाय सुझाया है ?
9. नई संस्कृति के निर्माण में लेखक सामान्य जनता को भी सहभागी क्यों बनाना चाहता है ?
10. इस पाठ के आधार पर रामवृक्ष बेनीपुरी की भाषा-शैली की तीन विशेषताएँ सोदाहरण लिखिए।
11. सप्रसंग व्याख्या कीजिए :
    (क) गेहूँ हमारी आँखों पर . . . . आदमी बनाया गुलाब ने।
    (ख) समाज की सारी साधनाओं . . . . . संस्कृति पर।
    (ग) हमारी यह गुलाब . . . . . . दूर-दूर ही रखना है।

एन०एल० रामानाथन

(1927-83)

एन०एल० रामानाथन ने कोचीन (केरल) में प्रारंभिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से 1949 ई. में भौतिकी में एम०एस-सी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। उसके बाद उन्होंने डाक्टर के०एस० कृष्णन जैसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक के मार्गदर्शन में भारतीय विज्ञान संस्थान, बंगलौर में अनुसंधानकर्ता के रूप में कार्य किया। थोड़े ही दिनों बाद उन्होंने अखिल भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान और जनस्वास्थ्य संस्थान, कलकत्ता में अनुसंधान-विज्ञानी के रूप में पदभार ग्रहण किया और औद्योगिक स्वास्थ्य, वायु-प्रदूषण, पर्यावरण, शारीरिक विज्ञान और स्वास्थ्य भौतिकी जैसे नए विषयों में महत्त्वपूर्ण कार्य किए। उन्होंने जादवपुर विश्वविद्यालय से पर्यावरण में पी-एच०डी० की उपाधि प्राप्त की और 1968 ई. में वे राष्ट्रीय व्यावसायिक स्वास्थ्य संस्थान, अहमदाबाद में आ गए और इस नए संस्थान के निर्माण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। यहाँ उन्होंने वायु प्रदूषण, औद्योगिक स्वास्थ्य और भारी धातुओं द्वारा पर्यावरण प्रदूषण के संबंध में अनुसंधान परियोजनाएँ चलाईं।

डा० रामानाथन एक वर्ष के लिए फैलो के रूप में सं०रा० अमरीका गए। वहाँ उन्हें अमरीकी औद्योगिक स्वास्थ्य संगठन के द्वारा 1973 ई. के वार्षिक सम्मेलन में सर्वोत्तम अनुसंधान-पत्र के लिए सम्मानित किया गया। 1981 ई. में उन्हें व्यावसायिक स्वास्थ्य में की गई सेवाओं के लिए सर अरदेशिर दलाल मेमोरियल गोल्ड मेडल प्रदान किया गया। उन्होंने 1982 ई. में औद्योगिक स्वास्थ्य के अध्यक्ष के रूप में कार्य किया। डा. रामानाथन ने 175 से अधिक मौलिक अनुसंधान पत्र लिखे जो मूल

और अनुवाद के रूप में भारत की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए। मूल अनुसंधान पत्रों में नवीन खोजों और अध्ययनों की जानकारी सरल एवं रोचक शैली में प्रस्तुत की गई है। डा० रामानाथन ने भारत सरकार द्वारा नव स्थापित पर्यावरण विभाग में निदेशक के रूप में 1976 ई. में कार्य-भार ग्रहण किया। यहाँ उन्होंने पर्यावरण प्रबंध, पर्यावरण शिक्षा, पर्यावरण नीति आदि विषयों पर अनुसंधान कार्यक्रम चलाए। पर्यावरण अनुसंधान समिति के सचिव के रूप में उनके द्वारा की गई सेवाएँ आज भी याद की जाती हैं। 12 अक्तूबर 1983 ई. को उनका निधन हुआ।

प्रस्तुत लेख **रसायन और हमारा पर्यावरण** में लेखक ने मानव जीवन में रसायन के महत्त्व और आवश्यकता का उल्लेख करते हुए स्पष्ट करना चाहा है कि रसायनों का अनुचित तथा अत्यधिक उपयोग हमारे स्वास्थ्य और पर्यावरण के लिए अनिष्टकारी सिद्ध हो सकता है। इसलिए उनका आग्रह है कि हमें रसायनों का उपयोग, उनसे होने वाली सभी हानियों को पूरी तरह समझते हुए, पूरे विवेक के साथ करना चाहिए।

8. रसायन और हमारा पर्यावरण

दुनिया रसायनों से ही चल रही है। जीवन, रासायनिक प्रक्रियाओं में गुँथा है। वास्तव में जीवन की प्रक्रियाएँ, क्रमिक रासायनिक अभिक्रियाओं का ही परिणाम है। हर साँस, हर प्रयत्न, पसीने की हर बूँद अथवा पेट में भूख की ऐंठन-सभी का कारण रासायनिक अभिक्रियाएँ हैं।

हम रसायनों के युग में रह रहे हैं। हमारे पर्यावरण की सारी वस्तुएँ और हम सब, रासायनिक यौगिकों के बने हैं। हवा, मिट्टी, पानी, खाना, वनस्पति और जीव-जंतु ये सब अजूबे जीवन की रासायनिक सच्चाई ने पैदा किए हैं। प्रकृति में सैकड़ों-हजारों रासायनिक पदार्थ हैं। रसायन न होते तो धरती पर जीवन भी नहीं होता। पानी, जो जीवन का आधार है, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बना एक रासायनिक यौगिक है। मधुर-मीठी चीनी, कार्बन, हाइड्रोजन और ऑक्सीजन से बनी है। कोयला और तेल, बीमारियों से मुक्ति दिलाने वाली औषधियाँ, एंटीबायोटिक्स, एस्प्रीन और पेनिसिलिन, अनाज, सब्जियाँ, फल और मेवे-सभी तो रसायन हैं।

आज रसायन विज्ञान काफी आगे बढ़ चुका है। जैसे-जैसे हमारी रसायन संबंधी क्षमता बढ़ी है, उनके जीव वैज्ञानिक प्रभावों के प्रति हमारी चिंता भी बढ़ी है। रसायनों का जरूरत से अधि और गलत उपयोग हमारे पर्यावरण और स्वास्थ्य के लिए विनाशकारी सिद्ध हो सकता है। जीवन के सभी क्षेत्रों में रसायनों के खतरों के प्रति बार-बार प्रश्न उठ रहे हैं। दिन-ब-दिन रसायनों के अकल्पित और अप्रत्याशित प्रभाव सामने आ रहे हैं। इनकी मारक शक्ति, आनुवंशिक, अनिष्टकर और क्षयकारी प्रभाव-सचमुच में सभी गंभीर चिंता के विषय हैं।

जीवन जोखिम से भरा है, गुफा-मानव ने जब भी आग जलाई, उसने जल जाने का ख़तरा उठाया। जीवनयापन के आधुनिक तरीकों ने

कुछ ख़तरों को कम किया है, पर कुछ ख़तरे अनेक गुना बढ़ गए हैं। ये ख़तरे नुकसान और शारीरिक चोट के रूप में हैं। हम सभी अपने दैनिक जीवन में जोखिम उठाते हैं। जैसे जब हम सड़क पार करते हैं, स्टोव जलाते हैं, कार में बैठते हैं, खेलते हैं, पालतू जानवरो को दुलारते हैं, घरेलू कामकाज करते हैं या केवल पेड़ के नीचे बैठे होते हैं, तो हम जोखिम उठा रहे होते हैं। इन जोखिमों में से कुछ तात्कालिक हैं, जैसे जलने का, गिरने का या अपने ऊपर कुछ गिर जाने का ख़तरा। कुछ ख़तरे ऐसे हैं जिनके प्रभाव लंबे समय के बाद सामने आते हैं। जैसे लंबे समय तक शोर-गुल वाले पर्यावरण में रहने वाले व्यक्तियों की श्रवणशक्ति कम हो सकती है।

क्या रसायन भी जोखिम उत्पन्न करते हैं? स्पष्ट है कि कुछ अवश्य करते हैं। उनमें से अनेक बहुत अधिक जहरीले हैं, कुछ प्रचंड विस्फोट करते हैं और कुछ अन्य अचानक आग पकड़ लेते हैं, ये रसायनों के कुछ तात्कालिक "उग्र" ख़तरे हैं। रसायनों से कुछ दीर्घकालिक ख़तरे भी होते हैं, क्योंकि कुछ रसायनों के संपर्क में अधिक समय तक रहने पर, चाहे उन रसायनों का स्तर लेशमात्र क्यों न हो, शरीर में बीमारियाँ पैदा हो सकती हैं।

मनुष्य और रसायन उद्योग ने रसायन के तात्कालिक उग्र ख़तरों को पहचानने की दिशा में अच्छा काम किया है और जनता तथा उन कर्मचारियों को, जो काम के दौरान रसायनों के संपर्क में रहते हैं, रसायनों के कुप्रभाव से बचाने के लिए आवश्यक एहतियाती कदम उठाए गए हैं। वास्तव में रसायनों के बारे में यह कहना शायद गलत न हो कि जो रसायन जितना अधिक जहरीला या ख़तरनाक होता है, उसका उपयोग आज उतना ही सुरक्षित है, क्योंकि लोग उसके बारे में पहले से सावधान होते हैं और इसलिए उन्हें इस्तेमाल करते वक्त काफी सतर्क रहते हैं।

लेकिन अपेक्षाकृत कम जहरीले रसायनों के बारे में यही बात नहीं कही जा सकती है। रसायनों के लंबे समय के बाद उजागर होने वाले प्रभाव, दीर्घकालिक ख़तरे, अभी हाल ही में पहचानी गई समस्या है। कुछ रसायन उस पीढ़ी को तो प्रभावित नहीं करते, जो उसके संपर्क में रहती है या उनके प्रति उद्भासित होती है, पर उनके प्रभाव अगली या

उससे भी अगली पीढ़ी को झेलने पड़ते हैं। ''थैलीडोमाइड'' से हमें इस बारे में सबक मिला है। ऐस्बेस्टस ने, जिसे हमने एक सुरक्षित पदार्थ समझा था और जो अग्नि को भी सह सकता है, अपने कैंसर पैदा करने के अवगुण से हमें आश्चर्य में डाल दिया। पौलीक्लोरीनेटिड बाइफेनिल, जो अपने परावैद्युत (डाईइलेक्ट्रिक) गुण के कारण जाने जाते हैं, वातावरण में धीरे-धीरे इकट्ठे होते जाते हैं और एक लंबे समय के बाद जीवों, मछलियों और यहाँ तक कि मनुष्यों के लिए भी ख़तरा उत्पन्न कर देते हैं। एक अन्य गज़ब के रसायन, डी.डी.टी. को तब ख़तरनाक करार दिया गया जब रचैल कार्सन ने अपनी पुस्तक ''साइलेंट स्प्रिंग'' में इसके अवगुण बखाने। कास्टिक सोडे के उत्पादन में काम आने वाली मरकरी सेल प्रौद्योगिकी दो दशक पहले तक बड़े मजे से इस्तेमाल की जाती रही, जब तक कि विश्व के सामने जापान में मिनामाटा की मछली खाने वाली आबादी में, अपंग बना देने वाला और आमतौर पर घातक सिद्ध होने वाला स्नायु रोग फैलने की घटना सामने नहीं आई। यह रोग पानी में बहिःस्राव के रूप में बहाए जाने वाले मरकरी के कारण फैल रहा था। इसका मैथिल मरकरी में जैविक परिवर्तन हो रहा था और मछलियाँ उसे मनुष्य में पहुँचा रही थीं।

हमारा आधुनिक औद्योगिक अनुभव, प्रतिदिन इस्तेमाल होने वाले रसायनों के दीर्घकालिक ख़तरों से भरा पड़ा है, इन रसायनों में भारी धातुएँ, कार्बनिक विलायक, डाइ इंटरमीडिएट, जहरीली वाष्प और गैसीय उत्सर्जक शामिल हैं। इनमें से अनेक प्रदूषकों को हम भोजन और पानी के साथ अपने पेट में अथवा साँस के साथ अपने फेफड़ों में ले जाते हैं। दुर्भाग्य से वायु प्रदूषण एक घरेलू शब्द बन गया है। कुछ ऐसे रसायन भी मौजूद हैं जो हमारी सही सलामत खाल से होते हुए हमारे शरीर में प्रवेश कर जाते हैं।

सीसा यानी लेड एक सर्वव्यापी विष है। सल्फर डाइऑक्साइड सब जगह पाई जाती है। हमारे लगभग सभी खाद्य पदार्थों में कीट-नाशक दवाइयों के अवशेष पहुँच चुके हैं। इनमें से अधिकतर रसायनों के जहरीलेपन के बारे में हमें जानकारी है, पर फिर भी उनसे जुड़े ख़तरों के बारे में अनेक ऐसे प्रश्न हैं जिनका उत्तर हमें मालूम नहीं हैं। इन प्रश्नों के बारे में वैज्ञानिकों की अलग-अलग राय है, पर इस बात से

सभी सहमत हैं कि रसायनों के संपर्क में रह कर काम करने वाले कर्मचारियों को उनसे सुरक्षा प्रदान करने और आम जनता तथा पर्यावरण को निम्नस्तरीय प्रदूषण से बचाने के लिए कदम उठाए जाने चाहिए। रासायनिक उत्पादों से निश्चित सुरक्षा पाने और पर्यावरण को प्रदूषित होने से बचाने के लिए हमें और अधिक जानकारी हासिल करने की जरूरत है।

सबसे पहले यह जरूरी है कि ख़तरों को पहचाना जाए। इसके बाद हमें अपने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के वर्तमान ज्ञान के आधार पर उन्हें निम्नतम स्तर तक कम करना चाहिए। किन्तु ज्ञान का कितना भी ऊँचा स्तर अथवा सरकारी कानून इन जोखिमों को पूरी तरह दूर नहीं कर सकते। क्या कोई दुनिया की उस स्थिति की कल्पना कर सकता है जिसमें सभी संभाव्य ख़तरनाक रसायनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया हो? ऐसा कुछ भी तो नही है जिससे हानि हो सकने की संभावना न हो। एक पुरानी कहावत है जिसका आशय है "अति से तो अमृत भी जहर बन जाता है।"

हमें जोखिमों पर अपने निर्णय खतरे की संभाव्यता के आधार पर जोखिम-लाभ विश्लेषण की संकल्पना को ध्यान में रखकर लेने होंगे। यह कोई ऐसा मामला नहीं है जिसमें काले को विशुद्ध काला और सफ़ेद को विशुद्ध सफ़ेद बतलाया जा सके अथवा स्पष्ट "हाँ" या "ना" कहा जा सके। यह किया कैसे जाए ? और क्या यह किया जाना आवश्यक है भी ? इस बारे में लोगों की रायों में बहुत अंतर होता है। इसलिए "ग्राह्य जोखिम" और "अग्राह्य जोखिम" शब्दों का इस्तेमाल होने लगा है।

खेती में इस्तेमाल होने वाले कीटनाशी मनुष्य के लिए किसी हद तक ज़हरीले हैं, इन्हें पर्यावरण में जानबूझ कर छिड़का जाता है, किन्तु इसके लिए इन्हें भली-भाँति परखा जाता है और इस्तेमाल की अनुमति दी जाती है। कारण, इससे फसल की वृद्धि के रूप में अधिक लाभ प्राप्त होता है। रासायनिक कीटनाशियों के इस तरह से नियंत्रित इस्तेमाल के ख़तरे ग्राह्य जोखिम हैं लेकिन जोखिम का मूल्यांकन समय अथवा परिस्थितियों के साथ बदल सकता है। विकसित देशों में सन् 1972 ई. के बाद डी. डी. टी. पर प्रतिबंध लगा दिया गया था, किंतु विकासशील

देश डी.डी.टी. के लगातार इस्तेमाल में आज भी लाभ देख रहे हैं।

कुछ रसायन जो अपने आप में सुरक्षित हैं, उस समय हानि पहुँचाते हैं जब वे अन्य पदार्थों से क्रिया कर लेते हैं या फिर जब वे अन्य पदार्थों के साथ मिलने के बाद अपना जहरीलापन छोड़ देते हैं। सोडियम और क्लोरीन दोनों ख़तरनाक हैं, किंतु साधारण नमक, सोडियम क्लोराइड जीवन के लिए जरूरी है। दूसरी ओर समुद्र का पानी पीने की दृष्टि से अत्यंत जहरीला है और लंबे समय तक नमक का सेवन रक्तचाप बढ़ने का कारण बन जाता है, जो एक दीर्घकालिक जोखिम है। यहाँ पर, मात्रा और जहरीलापन-दोनों तथ्य जोखिम के अर्थ को प्रभावित करते हैं।

कैंसर सबसे भयानक रोग है। कहा जाता है कि कैंसर अधिकतर पर्यावरणीय रसायनों के प्रति उद्‌भासन के कारण होता है। यह तथ्य है या यूँ ही उड़ाई गई बात ? कैंसर से संबंधित आँकड़े आज अविश्वसनीय हैं। ऐसी रिपोर्ट भी मौजूद है जो संकेत देती है कि कैंसर के मामले बढ़ रहे हैं, किन्तु अन्य रिपोर्टों के अनुसार कैंसर के मामले कम होते जा रहे हैं, पिछले 25 वर्षों में पेट के कैंसर के मामलों में कमी आई है किंतु फेफड़ों का कैंसर बढ़ा है।

आमतौर पर यह बताया जाता है कि कैंसर के 80 प्रतिशत मामले पर्यावरणीय कारकों से संबंधित हैं। इसका अर्थ यह लगा लिया जाता है कि सारा दोष संश्लेषित रसायनों और वायु प्रदूषण का है। तथ्य जबकि यह है कि ये आँकड़े केवल अर्ध अनुमान-आधारित हैं, इनमें उन सभी कैंसर के मामलों को भी गिना जाता है जो आनुवंशिक नहीं हैं। पर्यावरणीय कारकों में तंबाकू, भोजन, शराब, सूरज की रोशनी, पार्श्ववर्ती विकिरण और स्वच्छता भी शामिल हैं और प्रदूषण भी। प्रत्यक्ष रूप से काम-काज के वातावरण के कारण उत्पन्न कैंसर, कुल कैंसरों के मामलों का एक से पाँच प्रतिशत है।

रसायनों के बारे में, समाज के प्रति उसके लाभों और ख़तरों के बारे में निर्णय कौन करे ? इस संबंध में व्यक्तिगत और सामाजिक दृष्टिकोण हैं। जो आदमी सिगरेट पीता है या शराब का सेवन करता है और अपनी सेहत के प्रति लापरवाह है, जोख़िमों के संबंध में वह अपना ही निर्णय ले रहा है। दूसरी ओर, सामाजिक निर्णय सरकार को लेने होते

हैं। किंतु सरकार विज्ञान से लेकर सामान्य बुद्धि तक, सभी उपलब्ध सूचनाओं का उपयोग करके यह निर्णय किस प्रकार ले? रसायनों के इस्तेमाल पर सरकारी निर्णय, कानून और नियम बढ़ते जा रहे हैं क्योंकि जनता के स्वास्थ्य की सुरक्षा सरकार का कानूनी उत्तरदायित्व है।

रसायनों के संबंध में सूचनाओं का विश्लेषण आसान नहीं है। आदमियों से लेकर विधिवेत्ताओं तक, सभी प्रकार के लोगों का इस सूचना संग्रह में योगदान होता है। इनमें अक्सर असहमतियाँ होती हैं। मोटर गाड़ियों की गति-सीमा कितनी होनी चाहिए ? कोई रसायन कारखाना रोजगार, उत्पादन और सेवाएँ उपलब्ध करने के लिए बनाया जाना चाहिए या उसे इसलिए नहीं बनाया जाना चाहिए क्योंकि वह प्रदूषण फैलाता है ? ये सब रोज के प्रश्न हैं। हमारे निर्णय पर भावनाएँ और आशंकाएँ हावी हो जाती हैं। सही वैज्ञानिक तथ्य अधिकतर मौजूद नही होते या पर्याप्त नहीं होते। रसायनों के जोखिम के प्रति निर्णय लेना कभी भी आसान नहीं है, किन्तु आवश्यक हमेशा है।-जोखिमों और लाभों के बारे में निर्णय लेने वाले तो हम सब ही हैं।

रसायन हमारी आश्यकता है। ये हमारे पर्यावरण में हमेशा मौजूद हैं, इनकी सूक्ष्म अथवा लेश मात्रा भी "अर्थपूर्ण" हो सकती है। इन लेश रसायनों के बारे में हमें और अधिक जानने की जरूरत है। हमें इस बारे में भी और जानकारी हासिल करनी है कि इनसे क्या हो सकता है। जब तक कोई रसायन बिना किसी संदिग्धता के गैरजरूरी और हानिकर सिद्ध न हो जाए, तब तक उसका इस्तेमाल जारी रहने देना चाहिए। लेकिन यह इस्तेमाल सुरक्षित ढंग से और सुरक्षित मात्रा में होना चाहिए। तात्पर्य यह है कि संभावी लाभकारी पदार्थों का इस्तेमाल, उनके गलत इस्तेमाल से हो सकने वाली सभी हानियों को पूरी तरह जानते-समझते हुए, पूरे विवेक के साथ किया जाना चाहिए। प्रश्न उठता है कि क्या हम ऐसा करने में सफल हो सकते हैं? बहुत से मामलों में ऐसा किया जा चुका है और यदि हम कोशिश करें तो ऐसा अवश्य कर सकते हैं। इसमें शक नहीं, हमें लगातार सतर्क रहना होगा। रासायनिक सुरक्षा को प्रतिदिन का कार्य मान लिया जाना चाहिए।

प्रश्न-अभ्यास

1. ''रसायन हमारे जीवन की आवश्यकता है और पर्यावरणीय प्रदूषण का कारण भी'' – इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
2. रसायन विज्ञान की प्रगति हमारी चिंता का कारण क्यों बन रही है ?
3. अपेक्षाकृत कम ज़हरीले रसायनों का उपयोग उतना सुरक्षित क्यों नहीं है जितना कि अधिक जहरीले रसायनों का ?
4. रसायन से उत्पन्न दीर्घकालिक खतरों और तात्कालिक ख़तरों का अंतर सोदाहरण स्पष्ट कीजिए।
5. कुछ रासायनिक पदार्थ प्रारंभ में सुरक्षित और बाद में त्याज्य क्यों माने जाने लगते हैं?
6. सरकार द्वारा जनता को सिगरेट आदि पदार्थों से उत्पन्न ख़तरों के प्रति केवल सावधान करना पर्याप्त क्यों नही है ?
7. ''रसायनों के जोखिम के प्रति निर्णय लेना कभी भी आसान नही है किन्तु आवश्यक हमेशा है'' इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?
8. रसायनों के ख़तरों के संबंध में वैज्ञानिक, सरकार तथा आम व्यक्ति की भूमिकाओं पर प्रकाश डालिए।
9. आशय स्पष्ट कीजए :
   (क) ''रसायन न होते तो धरती पर जीवन भी नहीं होता।''
   (ख) ''जीवनयापन के आधुनिक तरीकों ने कुछ ख़तरों को कम किया पर कुछ ख़तरे अनेक गुना बढ़ गए हैं।''
   (ग) ''अति से तो अमृत भी जहर बन जाता है।''
10. पर्यावरणीय प्रदूषण से बचने के लेखक ने क्या उपाय बताए हैं?

शरद जोशी

(1931)

शरद जोशी का जन्म उज्जैन (मध्य प्रदेश) में हुआ। पिता के तबादले होते रहने के कारण उन्होंने मध्य प्रदेश के कई नगरों के विद्यालयों में शिक्षा प्राप्त की।

शरद जोशी ने प्रारंभिक वर्षों में पत्रकार के रूप में कार्य किया। आकाशवाणी तथा अन्य सरकारी कार्यालयों में नौकरी की, लेकिन बाद में नौकरी छोड़कर स्वतंत्र-लेखन को ही जीवन का लक्ष्य बना लिया। स्वतंत्र-लेखन में उन्होंने साहित्य की व्यंग्य-विधा को अपना विशेष क्षेत्र बनाया और सफलता भी प्राप्त की। अनेक पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ समय-समय पर प्रकाशित होती रहती हैं।

धर्म-अध्यात्म, राजनीति, सामाजिक जीवन, व्यक्तिगत आचरण कुछ भी उनकी पैनी दृष्टि से बच नहीं पाया है और सभी क्षेत्रों में पाई जाने वाली विसंगतियों का ऐसा मार्मिक उद्घाटन किया है कि पाठक चकित होकर उन पर सोचने के लिए विवश हो जाता है।

शरद जोशी की भाषा अत्यंत सरल एवं सहज है। स्थान-स्थान पर मुहावरों एवं हास-परिहास का हलका स्पर्श देकर उन्होंने रचना को अधिक रोचक बनाया है। उनकी प्रसिद्ध व्यंग्य पुस्तकें हैं : 'रहा किनारे बैठ', 'किसी बहाने', 'परिक्रमा', 'तिलस्म', 'दो व्यंग्य नाटक', 'पिछले दिनों में', 'जीप पर सवार इल्लियाँ' आदि।

प्रस्तुत निबंध **जीप पर. सवार इल्लियाँ** व्यंग्य की दृष्टि से एक सफल रचना है। लेखक ने आज की शासन-व्यवस्था पर करारी चोट की है। लोकहित की रक्षा और देश के विकास की जिम्मेदारी अपने कंधों पर ढोने वाले व्यक्ति देश की चिंता त्यागकर केवल अपनी स्वार्थपूर्ति में लिप्त

हैं। वे देश के विकास की खेती को उसी तरह चाट रहे हैं, जिस प्रकार फसल को इल्लियाँ चाट जाती हैं।

9. जीप पर सवार इल्लियाँ

इतना मैं निश्चित रूप से कह सकता हूँ कि चने के पौधे होते हैं, पेड़ नहीं होते। चने का जंगल नहीं होता, खेत होते हैं। यदि खेत नहीं होते तो बताइए यह गीत कैसे बना है कि ''समधन तेरी घोड़ी चने के खेत में'', यह पुष्ट प्रमाण है कि चने के खेत होते हैं। चने के झाड़ पर चढ़ने वाली बात सरासर गलत है, कपोल-कल्पना है। इससे आगे चने के बारे में मेरी जानकारी उतनी ही है जितनी हर बेसन खाने वाले की होती है कि वाह ! क्या बात है, आदि। मुझसे यदि चने पर भाषण देने के लिए कहा जाए, तो मैं कुछ यों शुरू करूँगा – भाइयो ! जिस तरह सूर्य मेरे मकान के इस बाजू उगकर उस बाजू डूब जाता है, उसी तरह चना भी खेत में उग कर आदमी अथवा घोड़े के मुँह में डूब जाता है। इतना कह कर मैं अपना स्थान ग्रहण कर लूँगा। यह भय बताकर कि समय अधिक हो रहा है। बात यह है कि मुँह में पानी आ जाने के कारण अधिक बोल नहीं सकूँगा। चना मेरी कमजोरी है। यह कमजोरी मुझे ताकत देती है। सिर्फ खाते समय, बोलते समय नहीं।

पर इधर शहर के अखबारों में चने की चर्चा ज़रा जोर पर है। इन दिनों मौसम खराब रहा। हम तो घर में घुसे रहे। पर पता लगा कि बाहर पानी गिरा और ठंड बढ़ गई। इसका नतीजा यह हुआ कि शहर के आसपास चने के खेत में इल्ली लग गई। अखबारों में शोर हुआ कि चने में इल्ली लग गई है और सरकार सो रही है, वगैरह। एक अखबार ने चने के पौधे पर बैठी इल्ली की तस्वीर भी छापी, जिसमें सचमुच में इल्ली सुंदर लग रही थी। चना हमने भी कम नहीं खाया, पर देखिए पक्षपात कि तस्वीर इल्ली की छपी है।

मैं इल्ली के विषय में कुछ नहीं जानता। कभी परिचय का सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ। इल्ली से बिल्ली और दिल्ली की तुक मिला

कर एक बच्चों की कविता लिख देने के सिवाय मेरी समझ में नहीं आ रहा था कि क्या करूँ, पर लोग थे कि इल्ली का ज़िक्र ऐसे इत्मीनान से करते थे जैसे पड़ोस में रहती हो।

मेरे एक मित्र हैं। ज्ञानी हैं, यानी पुरानी पोथियाँ पढ़े हुए हैं। मित्रों में एकाध मित्र बुद्धिमान होना चाहिए। इस नियम को मानकर मैं उनसे मित्रता बनाए हुए हूँ। एक बार विद्वत्ता की झोंक में उन्होंने बताया था कि एक नाम ''इला''। कह रहे थे कि अन्न की अधिष्ठात्री देवी है इला यानी पृथ्वी। मुझे बात याद रह गई। जब इल्ली लगने की खबरें चलीं, तो मैं सोचने लगा कि इस ''इला'' का ''इल्ली'' से क्या संबंध ? इला अन्न की अधिष्ठात्री देवी है और इल्ली अन्न की नष्टार्थी देवी। धन्य है। ये इल्लियाँ इसी इला की पुत्रियाँ हैं। अपनी ममी मादाम इला की कमाई खाकर अखबारों में पब्लिसिटी लूट रही हैं। मैं अपने इस इला-इल्ली ज्ञान से प्रभावित हो गया और सोचने लगा कि कोई विचार-गोष्ठी हो, तो मैं अपनी बुद्धि का प्रदर्शन करूँ। पर ये कृषि-विभाग वाले अपनी गोष्ठी में हमें क्यों बुलाने लगे। इधर मैं अपने ज्ञानी मित्र से इल्ली के विषय में अधिक जानने हेतु मिलने को उतावला होने लगा। मेरी पुत्री ने तभी इल्ली संबंधी अपने ज्ञान का परिचय देते हुए अपना ''प्राकृतिक विज्ञान : भाग चार'' देख कर कहा कि इल्ली से तितली बनती है। तितली जो फूलों पर मँडराती है, रस पीती, उड़ जाती है। मेरे अंतर में एक कवि है, जो काफ़ी हूट होने के बाद सुप्त हो गया है। तितली का नाम सुनते ही वह चौंक उठा और इल्ली के समर्थन में भाषण देने लगा कि यह तो बाग़ की शोभा है। मैंने कहा अबे गोभी के बिग फूल, तैने कभी अखबार पढ़ा, ये इल्लियाँ चने के खेत खा रही हैं और अगले वर्ष भुजिए और बेसन के लड्डू महँगे होने की संभावना है, मूर्ख, चुप रह ! कवि चुप क्यों रहने लगा ? मैंने दुबारा बुलाने का आश्वासन दिया, तब माइक से हटा।

जब अखबारों ने शोर मचाया, तो नेताओं ने भी भाषण शुरू किए या शायद नेताओं ने भाषण दिए, तब अखबारों ने शोर मचाया। पता नहीं पहले क्या हुआ ! खैर, सरकार जागी, मंत्री जागे, अफ़सर जागे, फाइल उदित हुई, बैठकें चहचहाईं, नींद में सोए चपरासी कैंटीन की ओर चाय लेने चल पड़े। वक्तव्यों की झाड़ुएँ सड़कों पर फिरने लगीं। कार्यकर्ताओं ने पंख फड़फड़ाए और वे गाँवों की ओर उड़ चले। सुबह

रेंगती हुई रिपोर्टों ने राजधानी को घेर लिया और हड़बड़ा कर आदेश निकले। जीपें गुर्राईं। तार तानकर इल्ली का मामला दिल्ली तक गया और ठेठ हिन्दी के ठाठ में कार्यवाहियाँ हुईं और खेतों पर हवाई जहाज सन्नाकर दवाइयाँ छिड़कने लगे। हेलीकॉप्टर मँडराने लगे। किसान दंग रह गए। फसल बची या नहीं क्या मालूम, पर वोट मजबूत हुए। इस बात को विरोधियों ने भी स्वीकार किया कि अगर ऐसे ही हवाईजहाज खेतों पर दवा छिड़कते रहे, तो अपनी जड़ें साफ हो जाएँगी। शहर के आस-पास यह होता रहा, पर बंदा अपना छह पृष्ठ का अखबार पढ़ता यहीं बैठा रहा। स्मरण रहे आलसियों की यथार्थवाद पर पकड़ हमेशा मजबूत रहती है।

एक दिन एक कृषि-अधिकारी ने कहा, चलो इल्ली उन्मूलन की प्रगति देखने खेतों में चलें। तुम भी बैठो हमारी जीप में। मैंने सोचा चलो इसी बहाने पता लग जाएगा कि चने के पौधे हैं या झाड़, और मैं जीप में सवार हो लिया। रास्ते भर उसके विभाग के अन्य अफसरों की बुराइयाँ करता उसका मनोरंजन करता रहा। कोई डेढ़ घंटे बाद हम एक ऐसी जगह पहुँच गए जहाँ चारों तरफ खेत थे। वहाँ एक छोटा अफसर खड़ा इस बड़े अफसर का इंतजार कर रहा था। हम उतर गए। मैंने गौर से देखा चने के पौधे होते हैं, खेत होते हैं, यानी समधन की घोड़ी कोई ग़लत नहीं खड़ी थी। वह वहीं खड़ी थी, जहाँ हमारी जीप खड़ी थी।

हम पैदल चलने लगे। चारों ओर खेत थे, मैंने एक किसान से पूछा, "तुम जब खेतों में खोदते हो तो क्या निकलता है?"

वह समझा नहीं। फिर बोला "मिट्टी निकलती है।"

"इसका मतलब है प्राचीनकाल में भी यहाँ खेत ही थे," मैंने कहा। मेरी ज़रा इतिहास में रुचि है। खुदाई करने से इतिहास का पता लगता है। अगर खुदाई करने से नगर निकले, तो समझना चाहिए कि यहाँ प्राचीनकाल में नगर था और यदि सिर्फ़ मिट्टी निकले तो समझना चाहिए कि यहाँ प्राचीनकाल में खेत थे। और यदि मिट्टी भी नहीं निकले तो समझना चाहिए कि खेत नहीं थे।

आगे-आगे बड़ा अफसर छोटे अफसर से बातें करता जा रहा था।

"इस खेत में तो इल्लियाँ नहीं हैं?" बड़े अफसर ने पूछा।

"जी नहीं हैं।" छोटा अफसर बोला।

"कुछ नज़र तो आ रही हैं।"

"जी हॉं, कुछ तो हैं।"

"कुछ तो हमेशा रहती हैं।"

"जी हाँ, कुछ तो हमेशा रहती हैं।"

"खास नुकसान नहीं करतीं।"

"जी, खास नुक़सान नहीं करतीं।"

"फिर भी ख़तरा है।"

"खतरा तो है।"

"कभी भी बढ़ सकती हैं।"

"जी हाँ, बढ़ सकती हैं।"

"सुना सारा खेत साफ़ कर देती हैं।"

"बिल्कुल साफ कर देती हैं।"

"इस खेत पर छिड़काव हो जाना चाहिए।"

"जी हाँ, हो जाना चाहिए।"

"तुम्हारा क्या ख्याल है?"

"जैसा आप फरमाएँ।" छोटे अफ़सर ने नम्रता से कहा। फिर वे दोनों चुपचाप चलने लगे।

"जैसी पोजीशन हो मुझे बताना, मैं हुक्म कर दूँगा।"

"मैं जैसी पोजीशन होगी आपके सामने पेश कर दूँगा।"

"और सुनो।"

"जो, हुक्म।"

"मुझे चना चाहिए, हरा बूट। घर ले जाना है। जीप में रखवा दो।"

"अभी रखवाता हूँ।"

छोटा अफ़सर किसान की तरफ़ लपका।

"ओए, क्या नाम है तेरा ?"

किसान भागकर पास आया। छोटे अफ़सर ने उससे घुड़ककर कहा, "अबे तेरे खेत में इल्ली है?"

"नहीं है हुज़ूर।"

"अबे थी ना, वो कहाँ गई?"

"हजूर पता नहीं कहाँ गई।"

"अबे बता कहाँ गई सब इल्ली?"

किसान हाथ जोड़ काँपने लगा। उसे लगा इस अपराध में उसका खेत जब्त हो जाएगा। छोटे अफ़सर ने क्रोध से सारे खेत की ओर देखा और फिर बोला, "अच्छा खैर, ज़रा हरा-भरा चना छाँटकर साहब की जीप में रखवा दे। चल ज़रा जल्दी कर।"

किसान खेत से चने के पौधे उखाड़ने लगा। छोटा अफ़सर उसके सर पर तना खड़ा था। इधर मैं और वह बड़ा अफ़सर चहलकदमी करते रहे, वह बोला, "मुझे खेतों में अच्छा लगता है। यहाँ सचमुच जीवन है, शांति है, सुख है।" वह जाने क्या-क्या बोलने लगा। उसने मुझे मैथिलीशरण गुप्त की "ग्राम - जीवन" पर लिखी कविता सुनाई जो उसने कभी आठवीं कक्षा में रटी थी। कहने लगा, मेरे मन में जब यह कविता उठती है, मैं जीप पर सवार हो खेतों में चला आता हूँ। मैं बूट तोड़ते किसान की ओर देखता सोचने लगा – गुप्तजी को क्या पता था कि वे कविता लिखकर क्या नुकसान करवा देंगे।

कुछ देर बाद हम लोग जीप पर सवार हो आगे बढ़ गए। किसान ने हमें जाते देख राहत की साँस ली। जीप में काफी हरा चना पड़ा था। मैं खाने लगा। वे लोग भी खाने लगे। एकाएक मुझे लगा कि जीप पर तीन इल्लियाँ सवार हैं, जो खेतों की ओर चली जा रही हैं। तीन बड़ी-बड़ी इल्लियाँ, सिर्फ तीन ही नहीं, ऐसी हज़ारों इल्लियाँ हैं, लाखों इल्लियाँ हैं, वे सिर्फ़ चना ही नहीं खा रहीं, सब कुछ खाती हैं और निःशंक जीपों पर सवार चली जा रही हैं।

प्रश्न-अभ्यास

1. इस पाठ में किन पर व्यंग्य किया गया है और क्यों ?
2. लेखक को चने में इल्ली लगने का समाचार कैसे मिला?
3. लेखक ने इल्ली का संबंध इला से किस प्रकार स्थापित किया है? इला का सही अर्थ देते हुए अपना उत्तर लिखिए।
4. इल्ली के संबंध में बुद्धि-प्रदर्शन के लिए लेखक क्यों उतावला हो उठा ?
5. बड़े अफ़सर के साथ छोटे अफ़सर की बातचीत का वर्णन अपनी भाषा में

कीजिए और बताइए कि छोटे अफ़सर द्वारा बड़े अफ्सर की ही बात का समर्थन कहाँ तक उचित था ?

6. छोटा अफ़सर बड़े अफ़सर की हर बात का समर्थन क्यों कर रहा था ? सही उत्तर को (✓) चिह्नित कीजिए।
   (क) बड़े अफ़सर के प्रति आदर भाव प्रकट करने के लिए।
   (ख) सरकारी कर्मचारी के रूप में अपने बड़े अधिकारी की आज्ञा-पालन करने के लिए।
   (ग) बड़े अफ़सर को हर स्थिति में खुश रखने और जी हुजूरी के लिए।
   (घ) बड़े अफ़सर के विचारों से अपने विचारों की समानता प्रकट करने के लिए।
7. नीचे लिखे कथनों में निहित व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।
   (क)". . . . इल्ली के समर्थन में भाषण देने लगा कि यह तो बाग की शोभा है।"
   (ख) "जब अख़बारों ने शोर मचाया, तो नेताओं ने भी भाषण शुरू किए या शायद नेताओं ने भाषण दिए, तब अख़बारों ने शोर मचाया।"
   (ग) "इस बात को विरोधियों ने भी स्वीकार किया कि अगर ऐसे ही हवाई जहाज़ खेतों पर दवा छिड़कते रहे तो अपने जड़ें साफ़ हो जाएँगी।"
   (घ) "एकाएक मुझे लगा कि जीप पर तीन इल्लियाँ सवार हैं।"
   (ङ.) "ऐसी हजारों इल्लियाँ हैं, लाखों इल्लियाँ, वे सिर्फ़ चना ही नहीं खा रहीं, सब कुछ खाती हैं और निःशंक जीपों पर सवार चली जा रही है।"
8. जीप पर सवार तीनों व्यक्तियों को इल्लियाँ क्यों कहा गया है?
9. अपनी रचना को दिलचस्प बनाने के लिए लेखक ने जिन युक्तियों का सहारा लिया है उनमें से किन्हीं तीन का सोदाहरण उल्लेख कीजिए।

सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'

(1911-87)

अज्ञेय जी का जन्म कसया (कुसीनगर), उत्तर प्रदेश में हुआ था। उनका बचपन अधिकतर लखनऊ, कश्मीर, बिहार और मद्रास में बीता। उनकी शिक्षा मद्रास और लाहौर में हुई जहाँ उनके विद्वान् पिता सेवारत थे। सन् 1929 ई. में पंजाब विश्वविद्यालय से उन्होंने बी.एस-सी. की परीक्षा पास की और अंग्रेजी विषय में एम.ए. की पढ़ाई करते समय दिल्ली षड्यंत्र तथा अन्य अभियोग के सिलसिले में फरार हुए किंतु बाद में पकड़े गए और दो वर्ष नज़रबंद रहे। उन्होंने किसान आंदोलन में भी सक्रिय भाग लिया। ''सैनिक'', ''विशाल भारत'', ''प्रतीक'', ''दिनमान'' और ''वाक्'' (अंग्रेजी त्रैमासिक)आदि पत्रिकाओं का उन्होंने बड़ी कुशलता से संपादन किया। कुछ वर्ष आकाशवाणी में सलाहकार के पद पर भी कार्य किया। सन् 1943 से 1946 तक के अपने जीवन के 3 वर्ष उन्होंने सेना में भी बिताए। सन् 1955 से 1956 तक यूरोप की और सन् 1957 से 1958 तक पूर्वेशिया की यात्राएँ कीं। इसके बाद अनेक बार भ्रमण और अध्यापन के सिलसिले में अज्ञेय जी विदेश गए हैं। विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ने डी. लिट्. की मानद उपाधि से अज्ञेय जी को विभूषित किया।

अज्ञेय जी एक सफल कवि, उपन्यासकार, कहानीकार, निबंधकार और आलोचक हैं और इन सभी क्षेत्रों में शीर्षस्थ हैं। छायावाद और रहस्यवाद के युग के बाद हिन्दी कविता को नई दिशा देने में अज्ञेय जी का सबसे बड़ा हाथ है। हिन्दी के अनेक नए कवियों के लिए अज्ञेय जी प्रेरणा-स्रोत और मार्गदर्शक रहे हैं। उनकी रचनाओं का मूल स्वर दार्शनिक और चिंतन-प्रधान है।

अज्ञेय जी की प्रमुख प्रकाशित रचनाएँ हैं – 'हरी घास पर क्षण भर', 'बावरा अहेरी', 'इंद्र धनु रौंदे हुए ये', 'सुनहले शैवाल', 'कितनी नावों में कितनी बार', 'सागर मुद्रा' आदि (कविता), 'शेखर: एक जीवनी', 'नदी के द्वीप', 'अपने-अपने अजनबी' (उपन्यास), 'अरे यायावर रहेगा याद,' 'एक बूँद सहसा उछली' (यात्रा वृत्तांत), 'त्रिशंकु', 'आत्मने पद' (निबंध), 'विपथगा', 'परंपरा', 'कोठरी की बात', 'शरणार्थी', 'जयदोल', 'ये तेरे प्रतिरूप' (कहानी संग्रह)।

प्रस्तुत पाठ में लेखक ने संस्मरणात्मक शैली में सरोजिनी नायडू के व्यक्तित्व की अनेक विशेषताओं पर प्रकाश डाला है, जैसे स्वतंत्रता संग्राम में उनकी सक्रिय भागीदारी, उनकी संस्कारिता, तेजस्विता, प्रभावशाली वक्तृत्व कला, निर्भीकता, गर्वभरी मुद्रा, स्पष्टवादिता, अंग्रेज़ी और हिन्दुस्तानी भाषा पर समान अधिकार, हाज़िर जवाबी, परिस्थितियों को सँभाल लेने तथा उस पर हावी होने की अद्‌भुत शक्ति आदि। लेखक ने श्रीमती नायडू के जीवन की अनेक घटनाओं और प्रसंगों का उल्लेख करते हुए उपर्युक्त गुणों और विशेषताओं का विवरण बहुत ही सजीव, रोचक और प्रभावपूर्ण बना दिया है।

10. भारत-कोकिला

'भारत-कोकिला' का विरुद श्रीमती सरोजिनी नायडू को दिया गया था तो अंग्रेजी उपाधि 'नाइटिंगेल ऑफ़ इंडिया' के प्रभाव में ही। अंग्रेज़ी में कविता करके उन्होंने विदेश में ख्याति पाई थी और विदेशी ख्याति का इस देश में बड़ा महत्त्व था (आज भी है), बड़ा दिखाने वाले मुकुर में जैसे बिंब से प्रतिबिंब बड़ा दीखने लगता है, वैसे ही अंग्रेजी में लिखने वाले भारतीय की प्रतिभासित देशी छवि भी बहुत बड़ी दीखने लगती है। पर 'नाइटिंगेल' अथवा कोकिला उन्हें केवल कवि होने के नाते नहीं कहा गया था। उनके स्वर में भी एक जादू था जो अंग्रेज़ी ही नहीं, हिन्दी-उर्दू में भी सिर पर चढ़कर बोलता था। निजी बातचीत में भी उनकी भाषा की संस्कारिता और उनके स्वर की मधुर तेजस्विता से लोग प्रभावित होते थे।और जिन्हें उनका व्याख्यान सुनने का अवसर मिलता था, उनके लिए तो वह एक चिरस्मरणीय अनुभव हो जाता था।

लाहौर में ब्रेडलॉ हाल के बाहर कांग्रेस का सम्मेलन था। इससे पूर्व कांग्रेस ने अपना लक्ष्य 'औपनिवेशिक स्वराज्य' से बदलकर 'पूर्ण स्वराज्य' घोषित कर दिया था और उसके बाद 26 जनवरी को रावी के किनारे आजादी की शपथ ली जा चुकी थी। नए उद्‌देश्य के व्यापक प्रचार का आंदोलन करने के लिए जो नेता ब्रेडलॉ हाल की सभा में आने वाले थे उनमें श्रीमती सरोजिनी नायडू प्रमुख थीं। हाल के सामने के चौक मे इतनी बड़ी भीड़ पहले कभी नहीं देखी गई थी : स्वयं संयोजक-मंडली आह्लादित होने के साथ-साथ कुछ सहमी हुई भी थी। लगभग डेढ़ लाख जनता उत्साह और धैर्य दोनों के मिश्रण से भरी प्रतीक्षा कर रही थी। भारत-कोकिला के आते ही पहले तालियों की गड़गड़ाहट हुई और फिर क्षण भर में ही एक तना हुआ सन्नाटा छा गया। श्रीमती नायडू ने सबसे पहले बोलना स्वीकार किया था बल्कि पसंद

किया था। संयोजकों ने भी सोचा कि इससे सभा पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा जिससे दूसरे वक्ता लाभ उठा सकेंगे।

श्रीमती नायडू आगे आकर खड़ी हुईं तो किसी ने माइक उनके सामने रख दिया। जनसभाओं में माइक और लाउडस्पीकर की व्यवस्था उन दिनों नई-नई चीज़ थी। वक्तृत्व शैली पर उसका प्रभाव अभी नहीं पड़ा था, लेकिन बहुत-से लोग उसे उपयोगी मानने लगे थे – खास कर कम समर्थ वक्ता ! इतनी बड़ी सभा को माइक के बिना संबोधित करने का साहस करनेवाले तो दो-चार ही नेता देश में थे।

माइक को देखकर श्रीमती नायडू की त्योरियाँ चढ़ गईं। राजसिक गर्व-भरी मुद्रा से माइक को मेज़ पर ठेलकर नीचे गिराते और सबको सकते में डालते हुए उन्होंने बोलना आरंभ किया तो उनके पहले ही शब्दों से सारी सभा में एक सनसनी-सी दौड़ गई। एक सन्नाटा और उसके बाद डेढ़ लाख जनता तक प्रयासरहित सहजता से पहुँचने वाले पहले ही शब्द – 'मेरी आवाज़' – 'मेरी आवाज़ भारत की लाख-लाख जनता तक किसी यंत्र के सहारे के बिना ही पहुँचेगी!' माइक को उठा फेंकने की सफ़ाई अंग्रेज़ी में देकर उन्होंने सभा को एक बार फिर अचरज में डालते हुए हिन्दुस्तानी में बोलना आरंभ किया।

श्रीमती नायडू जन्मना बंगाली थीं, विवाह से दक्षिण भारतीय, लेकिन हैदराबाद के जीवन में उन्होंने सरल उर्दू का जो अभ्यास किया था वह बड़े-बड़े वक्ताओं और साहित्यकारों के लिए भी गर्व की चीज हो सकती है। आज तो शायद ही कोई नेता होगा जो खिचड़ी के सिवा कोई भाषा बोलता हो, लेकिन भारत-कोकिला अंग्रेजी अथवा हिन्दुस्तानी में समान अधिकार और प्रभविष्णुता के साथ बोल सकती थीं: और दोनों ही में संस्कारी साधु शब्दावली का व्यवहार करते हुए।

उनका भाषण सुनने का मेरे लिए वह पहला अवसर था। लेकिन वैसे स्मरणीय अवसर दूसरों के संदर्भ में मुझे कम ही मिले। इसके बाद उनके तेजस्वी और प्रभावशाली व्यक्तित्व के दूसरे पक्ष देखने या सुनने के अवसर मुझे मिले और ये भी अपने ढंग से अद्वितीय और अविस्मरणीय अवसर रहे।

गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर विश्वभारती (शांतिनिकेतन) के लिए चंदा जुटाते हुएं लाहौर पधारे थे। लाहौर में उनके भक्तों की कमी नहीं

थी, यद्यपि कुछ में जितनी श्रद्धा थी उतना काव्य-विवेक अथवा रसज्ञान नहीं था। एक परम श्रद्धालु समृद्ध नागरिक ने, जिनका जूतों का देशव्यापी कारोबार था, विश्वभारती के लिए चंदे की मोटी रकम दी थी और साथ ही यह भी अरदास की थी कि गुरुदेव के आतिथ्य का पुण्य अवसर भी उन्हें ही दिया जाए। लाहौर के बाहर एकांत स्थान में उन्होंने नई कोठी बनवाई थी जो उन्होंने इस काम के लिए खाली कर दी। श्रद्धा और तत्परता के इस योग से प्रभावित होकर उनका आतिथ्य स्वीकार कर लिया गया। यह आश्वासन उनसे ले लिया गया कि कवि-गुरु की शांति में कोई बाधा नहीं डाली जाएगी।

आतिथेय अपनी समझ से अपनी प्रतिज्ञा का पूरा पालन कर रहे थे। वहाँ जो भी दर्शनार्थी आते उन्हें बाहर ही कड़ा आदेश दिया जाता कि वे केवल दूर से दर्शन करेंगे, एक शब्द भी नहीं बोलेंगे जिससे कि महाकवि की शांति में बाधा न पड़े। गुरुदेव जहाँ भी होते दर्शनार्थियों को उनके कमरे के द्वार (या कभी-कभी खिड़की) तक ले जाया जाता और परदा हटाकर दर्शन करा दिए जाते.... वहीं से नमस्कार करके वे लौट जाते। लेकिन आतिथेय चाहे जो समझते रहे हों, गुरुदेव को दिन-भर में सौ-दो सौ बार इस प्रकार झाँकी दिखाना असह्य था पर बेचारे कह भी क्या सकते थे?

ऐसे ही में श्रीमती सरोजिनी नायडू उनसे मिलने गईं। उनकी लड़की लीलामणि नायडू उन दिनों लाहौर के ही एक कॉलेज में अध्यापिका थीं और उनसे मेरा परिचय भी था। उसका फ़ायदा उठाते हुए मैं भी श्रीमती नायडू के साथ हो लिया था। श्रीमती नायडू की बोली की तरह उनकी चाल में भी एक राजसिक ठसक थी। गुरुदेव की बैठक में प्रवेश करते और परदा हटाते हुए उन्होंने द्वार से ही आवाज़ दी, 'वेल, गुरुदेव, एंड हाउ आर यू?' (कहिए, गुरुदेव, क्या हाल है?)

गुरुदेव भरे बैठे थे। आराम-कुर्सी से उठकर नाटकीय ढंग से बाँहें फैलाकर सरोजिनी की ओर बढ़ते हुए उन्होंने व्यथा-भरे स्वर में कहा, 'ओह, सरोजिनी, आइ'म डाइंग।' (सरोजिनी, मैं मर रहा हूँ!)

सरोजिनी जहाँ थीं वहीं ठिठक गईं। फिर मधुर ललकार-भरे स्वर में बोलीं, 'वेल, देन, गुरुदेव, वी'ल मीट इन हेवन!' (तो ठीक है गुरुदेव स्वर्ग में ही मुलाकात होगी।)

यह हँसी भी थी और एक प्रकार का व्यंग्य भी, गुरुदेव कुछ सकते-से में आ जहाँ के तहाँ रुक गए, फिर कुछ सँभलकर उन्होंने सरोजिनी को बिठाया और दूसरी बातें करने लगे— आतिथेय के रवैये की शिकायत उन्होंने नहीं की।

एक निडर बल्कि दबंग स्वभाव और उसके साथ ही एक आश्चर्यजनक हाज़िरजवाबी, और इन दोनों के साथ सार्वजनिक जीवन के उत्तरदायित्वों का एक गहरा बोध - यह उनके चरित्र की विशेषता थी, जिसके कारण वह परिस्थितियों को न केवल सँभाल लेती थीं बल्कि आश्चर्यजनक रूप से स्वयं उन पर हावी हो जाती थीं और दूसरे ताकते रह जाते थे। ऐसी ही एक घटना का ब्योरा मैंने सुना था जिसका साझा समाज से करना उचित है।

लंदन में गोलमेज़ सम्मेलन का अवसर था। भारत के प्रतिनिधि के रूप में केवल हमारा 'नंगा फ़कीर' जा रहा था। चर्चिल द्वारा प्रयुक्त यह विशेषण सारे संसार में गूँज चुका था। लंदन में तो बच्चा-बच्चा इसे जानता था। गांधी जी जिस मोटर में बैठकर सम्मेलन के लिए रवाना हुए उसमें सरोजिनी नायडू उनके साथ थीं। दर्शकों की भीड़ का कोई ठिकाना नहीं था, गाड़ी को बार-बार रुकना पड़ता था। लंदन के ढीठ छोकरे भी कार की खिड़की से झाँक-झाँककर गांधी जी को देख रहे थे। एकाएक ऐसा ही एक छोकरा झाँककर लंदन की खास बोली में अपने साथी से बोला : से, एंट ई, फ़नी! (यार,है न अजूबा!)

श्रीमती नायडू ने सुन लिया और तुरंत बाहर झाँककर उसी भाषा में, उसी लहजे में बोलीं, 'जस्ट लाइक मिकी माउस, नॉट आर्फ़ (ठीक मिकी माउस जैसा — तेरी कसम!) छोकरे थोड़े खिसिया गए, लेकिन सरोजिनी नायडू की हाज़िरजवाबी की जो धाक जमी उसकी प्रतिक्रिया भारत के पक्ष में ही गई।

निर्भीक स्पष्टवादिता और विनोद के ये गुण श्रीमती नायडू से विरासत में उनकी पुत्रियों को भी मिले थे, विशेष रूप से लीलामणि की जबान से तो लोग थर-थर काँपते थे। यहाँ उनकी हाज़िरजवाबी का भी एक संस्मरण उद्धृत करने का लोभ होता है।

साइमन कमीशन का बहिष्कार करने का निश्चय हुआ था, लेकिन कुछ लोग कमीशन के सामने बयान देने गए थे। लाहौर में पंजाब

विश्वविद्यालय के सेनेट हाल में कमीशन की बैठक हो रही थी। विश्वविद्यालय के कुछ व्यक्तियों को गैलरी में बैठने की अनुमति मिली थी, इनमें लीलामणि भी थीं। गवाहों के बयान पर वह लगातार व्यंग्य-भरी टिप्पणियाँ करती जाती थीं, जिसमें हम सब रस ले रहे थे। साइमन साहब का चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था। वह बार-बार नजर उठाकर गैलरी की ओर घूरते और फिर इसलिए सब्र कर लेते कि बाधा देने वाली एक स्त्री है। इससे लोगों को और मज़ा आता, इधर लीलामणि की छींटाकशी भी और तीखी होती जाती।

अंत में जब साइमन साहब से नहीं रहा गया तब उन्होंने गैलरी में लीलामणि की ओर देखते हुए पूछा, 'क्या यही शिक्षित भारतीय नारी का नमूना है ?'

नीचे कुछ लोग होठ दबाकर मुसकरा दिए। लेकिन गैलरी से कड़कती हुई आवाज़ आई, 'जी नहीं मैं ऑक्सफार्ड की फर्स्ट क्लास ग्रेजुएट हूँ।'

साइमन साहब ने कॉलर में उँगली डालकर गला ढीला किया मानो साँस घुटने लगी हो, पर इसके बाद बोले नहीं और गवाहियाँ जैसे-तैसे चलती रहीं।

भारत-कोकिला कविता अंग्रेज़ी में लिखती थीं और आरंभ में उसका पूरा संस्कार भी विदेशी था – संवेदन विदेशी, बिंब, कवि-अभिप्राय, समय तक सब विदेशी। एक अंग्रेज़ कवि आलोचक-अध्यापक के उत्तेजक प्रश्न की प्रेरणा से ही उनकी अंग्रेज़ी कविता ने एक गहरा भारतीय संस्कार अपनाया। बात संस्कार पाने की नहीं, केवल अपनाने और सहज होकर अभिव्यक्त करने की थी। भारतीय काव्य-दृष्टि तो सरोजिनी की परिचित थी ही और काव्य के ही नहीं, कवि के बारे में उनकी धारणाएँ काव्यशास्त्र-सम्मत थीं।

मेरा उनसे मिलना एकाधिक बार हो चुका था, लेकिन संदर्भ पत्रकारिता का ही रहा था, यह बात उन्हें नहीं मालूम थी कि मैं कविता भी लिखता हूँ। एक बार जब मैं एक संवाददाता के नाते एक चुनाव-अभियान में यात्रा कर रहा था, तो कांग्रेसी उम्मीदवार ने श्रीमती नायडू से मेरा फिर से परिचय कराते हुए उनसे कहा, 'ये हिन्दी के अच्छे कवि भी हैं।' श्रीमती नायडू ने कुछ आश्चर्य से मेरी ओर देखा (उस

आश्चर्य में शायद इस बात का भी योग रहा कि कांग्रेसी उम्मीदवार महाशय का कविता से कोई खास वास्ता नहीं था!)-और मुसकराकर मेरा कंधा थपथपाते हुए बोलीं, 'हाँ, यह बात हुई न ! कवि को कवि जैसा दिखना चाहिए।' फिर मुँह बिचकाकर और हाथों से एक विचित्र और हास्यास्पद इशारा करते हुए बोलीं, 'वह क्या तुम्हारे मरथिल्ले से और बाल बढ़ाए हुए लोग आ जाते हैं और कहते हैं कि मैं कवि हूँ। स्वस्थ और सुरूप नहीं होगा तो कहाँ का कवि!' फिर थोड़ा रुककर उन्होंने कहा, अब तक हिन्दी का एक कवि मेरा परिचित था-- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', आज दूसरा देखा, बाकी सब तो . . . ' फिर मुँह बिचकाकर उन्होंने वाक्य अधूरा छोड़ दिया। मैं पूछना चाह रहा था कि क्या 'निराला' को भी उन्होंने देखा है या नहीं, पर चुनाव सभा के मंच पर के क्षणिक साक्षात्कार में उसका मौका ही नहीं बना।

जिस भी गुण की उन्होंने प्रशस्ति की थी उसका श्रेय तो मेरा नहीं है। हाँ, उनके प्रसाद से कविता अभी तक लिखता आया हूँ। और कवि स्वस्थ, सुरूप और देह से समर्थ हो यह मुझे भी अच्छा लगता है, भले ही यह नहीं कहूँगा कि इसके बिना कवि नहीं हो सकता।

प्रश्न-अभ्यास

1. लेखक ने श्रीमती सरोजिनी नायडू के व्यक्तित्व के किन-किन पक्षों पर प्रकाश डाला है?
2. श्रीमती सरोजिनी नायडू की किन विशेषताओं के कारण उन्हें भारत-कोकिला का विरुद दिया गया ?
3. लाहौर के ब्रेडलॉ हाल के बाहर आयोजित सभा में माइक से न बोलने में श्रीमती नायडू का कौन-सा मनोभाव प्रकट होता है ?
4. लाहौर में गुरुदेव से श्रीमती नायडू की मुलाकात के प्रसंग में लेखक ने कहा है, ''यह हँसी भी थी और एक प्रकार का व्यंग्य भी।'' इस व्यंग्य को स्पष्ट कीजिए।
5. लंदन में अंग्रेज़ बालक द्वारा गांधी जी की वेश-भूषा पर की गई टिप्पणी का उत्तर सरोजिनी नायडू ने किस प्रकार दिया?
6. अपने किन गुणों के कारण श्रीमती नायडू विपरीत परिस्थितियों को सँभालने

और उन पर हावी हो जाने में समर्थ हो जाती थीं।

7. लेखक ने लीलामणि की हाज़िरजवाबी का संस्मरण किस उद्देश्य से जोड़ा है?
8. प्रारंभ में सरोजिनी नायडू की कविता किन बातों से प्रभावित थी? बाद में भारतीय संस्कार अपनाने पर उनकी कविता में क्या परिवर्तन आ गए ?
9. अज्ञेय का कवि के रूप में परिचय मिलने पर हिन्दी कवियों के प्रति श्रीमती नायडू की धारणा में क्या परिवर्तन हुआ?
10. प्रस्तुत पाठ की साहित्यिक विधा क्या है ?

    (क) जीवनी

    (ख) संस्मरण

    (ग) रेखाचित्र

    (घ) वर्णनात्मक निबंध ।

भगवतीशरण सिंह

(1919-88)

भगवतीशरण सिंह का जन्म वाराणसी में हुआ था। उनकी उच्च शिक्षा वाराणसी तथा इलाहाबाद में हुई। भारत सरकार की प्रशासनिक सेवा में उनका चयन हुआ और उन्होंने उत्तर प्रदेश, हिमाचल प्रदेश तथा भारत सरकार की केंद्रीय सेवा में अनेक उच्च पदों पर कार्य किया। उन्होंने 1977 ई. मे उत्तर प्रदेश शासन-सेवा में आयुक्त तथा सचिव पद से अवकाश ग्रहण किया।

अपने प्रशासनिक दायित्व को पूरा करते हुए उन्होंने हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने नागरी लिपि सुधार समिति के सदस्य सचिव, वैज्ञानिका शब्दावली समिति के सचिव, उत्तर प्रदेश सूचना विभाग के निदेशक, स्वतंत्रता संग्राम इतिहास-लेखन सलाहकार समिति के सदस्य तथा उत्तर प्रदेश हिन्दी समिति के सचिव आदि पदों पर रहकर स्वयं को हिन्दी-साहित्य से जोड़े रखा।

उनका लेखन-कार्य सन् 1938 में कहानी-लेखन और वैयक्तिक निबंधों से शुरू हुआ। वे सदैव हिन्दी-साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियों से जुड़े रहे और अनेक विधाओं में साहित्य का सृजन करते रहे। उनकी लगभग बीस पुस्तकें प्रकाश में आ चुकी हैं जिनमें 'अपराजिता', 'जंगल और जानवर' (कहानी संग्रह), 'मानव के मूल में', 'साहित्य : पहचान और पहुँच' (निबंध संग्रह), 'हिमनील', 'वन पाहुन' (प्रकृति और वन) विशेष उल्लेखनीय हैं।

उनका लेखन आज के युग की पहचान करने में समर्थ है। आज के भारतीय गाँव और शहर के परिवेश तथा उनकी समस्याओं का ज्ञान

और उनके निराकरण के संकेत में लेखक को सूक्ष्म एवं अंतर्भेदिनी दृष्टि के दर्शन किए जा सकते हैं। प्रकृति, पर्यावरण और वन आदि से लेखक का गहरा लगाव रहा है।

नदी बहती रहे निबंध उनकी "वन पाहुन" पुस्तक से लिया गया है। इस निबंध में लेखक ने भारत की नदियों का देश कहा है और बतलाया है कि नदियाँ किस प्रकार भारत की आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन की समृद्धि में अपना योगदान करती रही हैं। वन-पर्वत और नदी के अटूट पारस्परिक संबंध को स्पष्ट करते हुए वनों की महत्ता को विशेष रूप से रेखांकित किया गया है और वन-व्यवस्था के सुधार के लिए कुछ मौलिक सुझाव भी दिए गए हैं। पर्यावरण प्रदूषण, निरंतर होनेवाले जल प्रदूषण से लेखक दुःखी है और चाहता है कि वन उगते रहें, फूलते और फलते रहें, पर्वत वनस्पति से ढँके रहें और नदी निरंतर बहती रहे।

11. नदी बहती रहे

भारत नदियों का देश रहा है।इसलिए नहीं कि इस देश में नदियों की ही अधिकता है बल्कि इसलिए कि इस देश में नदियों का विशेष रूप से सम्मान हुआ है। वे हमारे जीवन में बहुत महत्त्व रखती रही हैं। उनसे हमारा आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक जीवन समृद्ध हुआ है। आज वे अपना प्राचीन महत्त्व खोती जा रही हैं। प्राचीन ग्रंथों में विशेषकर वेदों, ब्राह्मण ग्रंथों और पुराणों में हमारे वनों, पर्वतों और नदियों के बारे में प्रचुर सामग्री मिलती है। नदियों के किनारे न केवल ग्राम, नगर और राजधानियाँ बसी थीं और वे न केवल यातायात का साधन थीं वरन् उनमें मनुष्य और पशु समान रूप से विहार करते थे। हाथी का वारण नाम केवल इस कारण पड़ा कि वह वारि में, जल में विहार करता रहता है।

नदियों को देवियों का स्वरूप प्रदान किया गया। उनकी देवता शक्ति की पहचानकर उन्हें संस्कारों में स्थान दिया गया। हर संकल्प में जिस 'जंबूद्वीपे भरत-खंडे' का उच्चारण प्रत्येक भारतीय सुनता रहता है, वह नदियों का यह आवाहन भी सुनता रहता है– ''गंगा च यमुना चैव गोदावरी सरस्वती। नर्मदा-सिंधु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु।'' इन नामों को सुनने वाला भारतीय न केवल सात प्रमुख नदियों का नाम जानता रहता है,वरन् उसे भारत की एकता का भी ज्ञान होता रहता है। इनके अतिरिक्त भी अनेकानेक नदियाँ अपने नए-पुराने नामों में आज भी जानी जाती हैं और भारत को शस्य-श्यामल बनाने का प्रयत्न करती रहती हैं।

जिस प्रकार वनों का वृक्षों से, नदियों का जल से अहिकुंडलिनी संबंध है, उसी प्रकार नदियों का वनों से भी कदंबकोरक संबंध मानना चाहिए। वनों के रहते नदियाँ स्वतः फूट पड़ती हैं, प्रवाहित होती रहती

हैं। वन नहीं रहेंगे तो नदियाँ नहीं रहेंगी। नदियों के न रहने पर हमारी संस्कृति विच्छिन्न हो जाएगी। हमारा जीवन-स्रोत ही सूख जाएगा। अतः वनों की आवश्यकता और महत्ता को अस्वीकार करके न तो हम आर्थिक उन्नति के सोपान गढ़ सकते हैं और न स्वास्थ्य और सुख की कल्पना ही कर सकते हैं।

आदमी की ज़िंदगी अपने-आप में बहुत ही अकेली और नीरस होती है। आदमी-आदमी के रिश्ते-नाते उसका बहुत दूर तक साथ नहीं देते। पर जब वह इनसे आगे बढ़कर एक व्यापक संबंध कायम करने की कोशिश करता है, तो उसके साथ वन, पर्वत, नदी आदि सब चल पड़ते हैं। तब वह अकेला नहीं रह जाता। आज वह वनस्पतियों और पानी के रिश्ते को भूलकर अपने को भी अकेला बना रहा है और उनके आपसी संबंधों का भी विच्छेद करता जा रहा है। गंगा, यमुना, गोदावरी, नर्मदा और कावेरी आज भी भारत में बह रही हैं पर अब वे मोक्षदायिनी नहीं रह गई हैं। वही गंगा जिसे हम विष्णुपदी, जाह्नवी, मंदाकिनी और भागीरथी आदि नामों से जानते थे और जो कभी बिंदुसर, कभी पद्महृलद और कभी अनोतत्त झील से निकलती हुई जानी जाकर उत्तर भारत को सिंचित करती थी, उसी गंगा के अब गढ़वाल क्षेत्र में गंगोत्री के समीप ही दर्शन होते हैं। देवप्रयाग में अलकनंदा मिलती है। देवप्रयाग तक आने वाली भागीरथी देवप्रयाग से आगे गंगा नाम धारणकर हरिद्वार या गंगाद्वार के आगे बुलंदशहर तक दक्षिण की ओर बढ़ती चलती है। उसके आगे यह प्रयाग तक दक्षिण-से-पूर्व की ओर बहती हुई अपने में यमुना को समेटती है। तीर्थराज प्रयाग से आगे, काशी को छोड़कर जहाँ यह पुनः उत्तरवाहिनी होती है, प्रायः पूर्व की ओर बढ़ती चली जाती है। गंगासागर कभी तीर्थ था।

गंगा की उन्नीस प्रमुख सहायक नदियाँ बताई गई हैं, जिनमें से गंगा के ऊपरी प्रवाह में अलकनंदा, जो मंदाकिनी के जल से, जिसे काली गंगा भी कहा गया है, आपूरित होकर इसमें मिल चुकी होती है। फर्रुखाबाद में इसमें नुत नदी मिलती है। फिर तो रामगंगा, गोमती, धूतपापा, तमसा, सरयू (घाघरा), गंडकी, कमला, कौशिकी (कोसी), शोण आदि नदियाँ अपने जल में नागर क्षेत्रों का मल एकत्र करती हुई, बड़े-बड़े कल-कारखानों का उच्छिष्ट बटोरती हल्दिया के पास सागर

संगम करती हैं। भागीरथी और पद्मा के अतिरिक्त उसमें कई अन्य नदियों का भी जल मिलता है। फिर भी पानी के बहाव की कमी के कारण वहाँ इसमें बड़े-बड़े सिकतामेरु बन जाते हैं जो जहाज़ों को आने से रोकते रहते हैं। जब ऐसी महत्त्व की पुण्यतोया नदी का यह हाल हो रहा है तो औरों का क्या कहा जाए। ग्रीक-लैटिन लेखकों ने गंगा को सिंधु से भी अधिक महत्त्व दिया है जबकि सिंधु और सैंधव प्रदेश आर्यों का आदिदेश भी माना गया और वही आर्य संस्कृति आज भारतीय संस्कृति के रूप में जानी जा रही है।

"गंगा के डेल्टा के समुद्रांत छोर ने वनाच्छादित एक विस्तृत दलदली क्षेत्र को घेर रखा है जिसे सुंदरवन कहा जाता है।" इस सुंदरवन की दर्दनाक दशा की ख़बरें आए दिन अख़बारों में छपती रहती हैं। अब सुंदरवन भी सुंदर नहीं रह गया। गंगा का जो महत्त्व बहुत थोड़े में ऊपर बताया गया, वह केवल पौराणिक महत्त्व ही नहीं है। उसे आज के संदर्भ में भी देखना होगा।

यही हाल यमुना का भी है। यह गंगा की पहली तथा बड़ी पश्चिमी सहायक नदी है। यह हिमालय पर्वतामाला में कामेत पर्वत के आगे से निकलती है। यमुनोत्री आज की कुरसौली से 12 किलोमीटर दूर है। पाली भाष्यों में अनोतत्त झील को ही गंगा के साथ यमुना और अचिरावती, सरयू तथा मही नामक नदियों का भी उद्गम माना गया है। शुर-चिंग-यू के अनुसार, अनोतत्त अर्थात् अनवतप्त झील हिमालय के शीर्ष पर स्थित है और इसी से पूर्व की ओर गंगा, दक्षिण की ओर सिंधु, पश्चिम की ओर वंक्षु और उत्तर की ओर सीता नामक चार नदियाँ निकली थीं। गंगा-यमुना के बीच के प्रदेश को अंतर्वेद कहा गया है। गंगा-यमुना के इसी संगम पर रामायणकालीन भारद्वाज ऋषि का आश्रम था। तैत्तिरीय आरण्यक के अनुसार, "गंगा एवं यमुना के बीच में रहने वाले विशेष रूप से सम्मानित होते थे।"

ज़रा-सा भी ध्यान दिया जाए तो यह स्पष्ट हो जाता है कि सारा भारत आज भी प्रमुख नदियों के समूह में बँटा हुआ है। मध्य देश में गंगा-यमुना समूह, पूर्व में ब्रह्मपुत्र-मेघना समूह, पश्चिम में नर्मदा-ताप्ती समूह, दक्षिण-पूर्व (उड़ीसा) में महानदी समूह हैं। दक्षिण भारत में कृष्णा नदी-समूह और कावेरी नदी-समूह। सिंधु नदी-समूह की बात अब नहीं

की जा सकती। इसी प्रकार ब्रह्मपुत्र-मेघना समूह से सिंचित अधिकांश क्षेत्र अब बंगलादेश ही है। पर सरस्वती-दृषद्वती समूह से अनुप्राणित भू-भाग अभी भी भारत मे ही हैं। कुछ नदियों के विस्तृत विवरण भी दिए हुए हैं, जिनके सहारे प्राचीन भारत के इतिहास पर विशेषकर उसके सामाजिक एवं सांस्कृतिक पक्ष पर प्रचुर प्रकाश पड़ता है। इन नदियों के किनारे बसे नगर या तो विशाल एवं शक्तिशाली राज्यों की राजधानियाँ थे अथवा शिक्षा और व्यवसाय के केन्द्र। मंदिरों की भी स्थापना इनके किनारे हुई। इस कारण ये हमारी स्थापत्यकला की भी स्मृतियाँ जगाती रहती हैं। इन मंदिरों का प्रश्रय पाकर जिस प्रकार संगीत, नृत्य और नाट्य-कला की सृष्टि और संवर्धन हुआ उसमें भी इन नदियों का महत्त्व अस्वीकार नहीं किया जा सकता। अकेले नर्मदा के महत्त्व को प्रदर्शित करने में मत्स्य् पुराण के लगभग नौ अध्याय लिखे गए। फिर यह तो एक पुराण की बात हुई। सारा पुराण साहित्य, प्राचीन संस्कृति साहित्य, सभी इनके उद्धरणों से भरे पड़े हैं।

भारतीय-भू-भौगोलिक स्थिति को ठीक-ठाक समझने के लिए यहाँ के पर्वत-समूहों और नदी-समूहों का विस्तृत अध्ययन आवश्यक है। खेद है कि आजकल जिस प्रकार का भूगोल स्कूलों आदि में पढ़ाया जाता है, वह नीरस और भारतीय जीवन-धारा तथा उसके इतिहास और संस्कृति से कटा हुआ है। इन पर्वत और नदी समूहों के परिप्रेक्ष्य में भी भारत का पूरा चित्र बनता ही नहीं, जब तक उसकी वन राजि को सम्मिलित न किया जाए। कालिदास के समय तक भी इस देश का अधिकांश भाग जंगलों से आवृत्त था। प्राप्त प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि छठी शताब्दी ईसापूर्व तक इस देश में 'स्वयंजात वन' की स्थिति बनी रही। इसके उदाहरणस्वरूप कुरुप्रदेश के कुरुजंगल वन्य क्षेत्र को उपस्थित किया जा सकता है। साकेत में अंजनवन तथा वैशाली और कपिलवस्तु में महावन प्राकृतिक (स्वयंजात) वन थे। वैशाली नगर के बाहर महावन निरंतर हिमालय तक फैला हुआ था। कपिलवस्तु के महावन की भी यही दशा थी। कौशांबी से कुछ दूर और श्रावस्ती के तट में पारिलेण्यकवन था, जिसमें हाथी रहते थे। रोहिणी नदी के तट पर स्थित लुंबिनी वन भी एक प्राकृतिक जंगल था। इस प्रकार यह देश नदियों, पर्वतों और वनों से भरा-पूरा संसार के देशों में अतुलनीय था।

पर मानव आबादी कम थी।

आज स्थिति कुछ दूसरी ही है। भारत की विशाल और बढ़ रही आबादी के लिए पानी की माँग, घरेलू उपयोग, कृषि, उद्योग, मछली-पालन उद्योग, नौवहन, विद्युत उत्पादन के लिए पूरी की जानी है और साथ ही नागरिकों, उद्योगों और खेती-बाड़ी की गंदगी दूर करने के लिए भी पानी की आवश्यकता होती है। इस बात के प्रमाण मौजूद हैं कि सारे देश में जल-प्रदूषण के प्रतिकूल प्रभाव पड़ रहे हैं। इस संबंध में पानी से उत्पन्न होनेवाली छूत की बीमारियों जैसे हैजा, पीलिया, टाइफ़ाइड तथा दूषित पानी से मछलियों और कृषि उपज को हो रही हानि का उल्लेख किया जा सकता है। उत्तर में डल झील से लेकर दक्षिण में पेरियार और यालियार नदियों तक, पूरब में दामोदर और हुगली से लेकर पश्चिम में थाणा की सँकरी खाड़ियों तक, सब जगह जल-प्रदूषण की स्थिति चिंता का विषय बनी हुई है। यहाँ तक कि गंगा जैसी बारह-मासी नदियाँ भी जल-प्रदूषण से बहुत अधिक ग्रस्त हैं। मानव बस्तियों और उद्योगों का गंदा पानी सीधे जल-प्रवाह में मिल जाता है जो अधिकांश रूप से उपयोग करने लायक नहीं रह जाता। रोजाना जिस प्रकार गंदा पानी छोड़ा जा रहा है उससे प्राकृतिक जल, जैसे-नदियों, खाड़ियों और समुद्र तटवर्ती पानी को खतरा पैदा हो गया है। अतः ऐसी स्थिति में न कश्मीर ही स्वर्ग रह गया और न काशी हीं तीन लोक से न्यारी रह गई। जब गंगा गंगा न रही, तब काशी की क्या स्थिति रहेगी?

इस देश की नदियाँ ही इसकी श्री रही हैं। जिस देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या नदियों के घाटी-क्षेत्र में निवास कर रही हो, उसे जब पुराणों में असंख्य नदियों का देश कहा गया तो अतिशयोक्ति नहीं थी। जब यह तथ्य सामने आ गया है तो आवश्यकता इस बात की हैं कि प्रदेशों के कृषि-विभाग और वन-विभाग तथा सिंचाई आदि विभागों की अलग-अलग अमलदारी समाप्त कर दी जाए। हर प्रदेश में जलागम-क्षेत्र अधिकरणों की स्थापना करके विकास की योजनाएँ एक ही अधिकरण के अधीन इस प्रकार समन्वित करके चलाई जाएँ कि देश के स्वास्थ्य, सुख और समृद्धि की समग्रता सदा आँख के सामने बनी रहे और ऐसा न होने पाए कि एक ही शरीर का एक हाथ दूसरे हाथ को काटता रहे और शरीर भी नष्ट होता रहे। जाहिर है कि वनों और नदियों का बड़ा

घनिष्ठ संबंध है और वन नदियों को न केवल उथली होने से बचाते हैं वरन् भूमिगत जल को सुरक्षित रखकर नदी के पानी की कमी को भी पूरा करते रहते हैं। भारत में वनों से आच्छादित भूमि का अभाव इसी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि वन भूमि के रूप में वर्गीकृत 750 लाख हैक्टेयर भूमि के आधे से भी कम भूमि में वास्तव में समुचित मात्रा में वृक्ष हैं। इसके अतिरिक्त यह भी अनुमान है कि लगभग 200 लाख हैक्टेयर तक की वन-भूमि भी भू-अपरदन से प्रभावित है। वास्तव में देश के भू-धरातल की 12 प्रतिशत से अधिक भूमि समुचित रूप से वृक्षों में आच्छादित नहीं है जबकि वर्ष 1952 की राष्ट्रीय वन-नीति के अनुसार, 33 प्रतिशत का लक्ष्य निर्धारित किया गया था।

भारत में वन्य पशुओं और पक्षियों, वनस्पतियों और जलाशयों की विविधता और बहुलता को सभी मानते रहे हैं। आज जब इनके पर्यवेक्षण और सर्वेक्षण के नवीन वैज्ञानिक उपकरण उपलब्ध हो गए हैं तो इनके बारे में जो कहा जाएगा, निश्चय ही वह यदा-कदा साँचे में ढली हुई काव्य-शैली में वर्ण्य-विषय के समान नहीं होगा। इस संबंध में योजना आयोग का उद्धरण आवश्यक जान पड़ता है—"भारत पशु तथा प्राणी-संपदा से भरपूर होने के कारण प्राकृतिक जीवित संसाधनों की विपुल विविधता से संपन्न देश है, जिस पर लाखों व्यक्ति अपने निर्वाह के लिए आश्रित हैं तथा जल-भूमि के उचित प्रबंध द्वारा जहाँ देश की मूलभूत जैविक उत्पादकता का संरक्षण पारिस्थितिकीय दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है, वहाँ इसकी आनुवंशिक विविधता की रक्षा तथा उसकी प्रजातियों और पारिस्थितिकीय व्यवस्था का संरक्षण केवल उन्हें लगातार उपयोग में लाने की दृष्टि से ही नहीं, बल्कि हमारे लोगों के भावी अस्तित्व तथा विकास के लिए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। निरंतर तेज़ी से बढ़ती जा रही जनसंख्या के दबाव के कारण लुप्त होती जा रही प्रजातियों तथा पारिस्थितिकीय व्यवस्थाओं के फलस्वरूप तथा प्राकृतिक पर्यावरण के योजनाविहीन विकास के कारण हमारी प्रजातियों के प्राकृतिक आवास शीघ्रता से समाप्त अथवा कुछ बदलते जा रहे हैं।"

भारत सरकार को पता है कि चौड़ी पत्ती वाले वृक्षों के स्वयंजात वन नष्ट हो गए हैं, जहाँ-जहाँ भी दुर्लभ जाति के पशु-पक्षी और वनस्पतियाँ मिलती हैं वे सब प्रायः पहाड़ी क्षेत्र हैं और बढ़ती हुई आबादी

के कारण चूँकि इनका नाश रोकना संभव नही है अतः इनकी किस्मों की रक्षा अब राष्ट्रीय उद्यानों में ही संभव है। राष्ट्रीय उद्यान इन प्रजातियों की नुमाइश तो कर सकते हैं, इन्हे इनकी प्रकृत वास-भूमि नहीं देख सकते। खेती बढ़ती ही जाएगी और जमीन अनुपजाऊ और चटियल होकर रहेगी। पर यहाँ क्योंकि यह सत्य योजना-आयोग को मालूम है और वह उसके कारणों को जानकर उनके निवारण के प्रति सचेष्ट जान पड़ता है, अतः यह आशा की जानी चाहिए कि उसके बार-बार आग्रह करते रहने पर भारत सरकार का ध्यान इस ओर जाएगा और वह 'उष्ण कटिबंधीय वर्षा वनों' की रक्षा का पूरा प्रयत्न करेगी। साथ ही इस बात की भी आवश्यकता है कि वन-विभाग स्वयंजात वनों में उगनेवाली वनस्पतियों की वनीकरण की नीति में विशेष स्थान दे, खासकर ऐसी दशा में जबकि यह स्वीकार कर लिया गया है कि वनों का मुख्य उद्देश्य राजस्व में वृद्धि करना नहीं है। वन जिस समृद्धि की रक्षा करते रहे हैं और जो वह कर सकते हैं,उसके बारे में भी योजना आयोग का मत स्पष्ट है : ''वे हमारे लोगों के भावी अस्तित्व तथा विकास के लिए भी अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं।''

ऊपर के उद्धरणों से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि वनों, पर्वतों और नदियों का बहुत नज़दीकी रिश्ता है। ये तीनों ही एक साथ रहते हैं और एक साथ वन और नदियाँ मैदानों में उतरती हैं। लेकिन जिस प्रकार की वन-व्यवस्था आज है उसमें न तो वनस्पतियों, न वन्य पशुओं और न ही नदियों की रक्षा संभव है। वनों का उपयोग उद्योग और व्यापार में होगा। इससे विरत नहीं हुआ जा सकता। पर 'आयोग' स्वयं मानता है कि ''सरकारी वनों को बिकाऊ लकड़ी और लुगदी उत्पादन के लिए संकुचित दृष्टि से देखा गया है। उनपर तेज़ी से सागौन, वीड़ और यूकलिप्टस के पौधे उगाए गए।'' आवश्यकता इसी ''संकुचित दृष्टि'' को छोड़ने की है। वनों की उपयोगिता मानव की समग्र समृद्धि के लिए है। समृद्धि की इस समग्रता में उसकी आर्थिक, सामाजिक और आध्यात्मिक समृद्धियाँ शामिल हैं। ऐसी समग्र समृद्धि को देनेवाले वन, वन्य पशुओं, पक्षियों और नदियों से विहीन नहीं रह सकते।

देशी पौधों की बात करना और उनकी पहचान में घूमना अब पागलपन में गिना जाने लगा है। पढ़े-लिखे और तथाकथित शिक्षित लोग

ऐसी बातों को उपहासास्पद मानते हैं और उन पर बात करना समय का अपव्यय मानते हैं। अब साहित्य में भी उनकी चर्चा नहीं आती। शाल, वेणु, धव, अश्वत्थ, तिंदुक, इंगुद, पलाश, अर्जुन, अरिष्ट, तिनिश, लोध, पद्मक, प्रियाल, ताल, पुन्नाग, पृक्ष आदि के नाम और उनकी पहचान सब जगह से खो गई। वनस्पति शास्त्र की किताबों में भी अगर ये वृक्ष हैं तो अपने वैज्ञानिक नामों से ही जाने जा सकते हैं। इनके देशज अथवा संस्कृत नाम तो समाप्त ही हो गए। स्वयंजात वनों के न रहने पर वनस्पतियों का वह भंडार समाप्त हो गया जिसकी ओर आयोग ने संकेत किया है। कभी हमें अपने यहाँ उगनेवाली वनस्पतियों की अच्छी पहचान थी। हम पृथ्वी को भी पहचानते थे और पृथ्वी और वनस्पति के साथ जल को भी जानते थे। उनकी मर्यादा की रक्षा के लिए भारतीयों ने उन्हें अच्छे-अच्छे नाम दिए और अपने साहित्य में उन्हें अच्छा स्थान दिया। शतपथ ब्राह्मण में एक कथा है। विष्णु को लिटाकर जब देवों ने असुरों से संग्राम में हारकर भी छल से सारी पृथ्वी अपने लिए ले ली तो उन्होंने औषधियों (वनस्पतियों) के मूल में यज्ञ को पाया।क्योंकि औषधियाँ पृथ्वी पर थीं और उन्होंने वहाँ यज्ञ को पाया था अतः पृथ्वी का नाम 'वेदि' भी पड़ गया। जब पृथ्वी को वेदि कहा तो उसे सूक्ष्मा (अच्छी भूमि) और शिवा (कल्याणमयी) भी कहा। दूसरे शब्दों में भारतीयों की यह पुरानी मर्यादा रही है कि वह पृथ्वी को अपनी माता मानकर उसे सूक्ष्मा और शिवा के रूप में देखते रहे हैं। इसमें भी उनका मन नहीं भरा तो फिर उसे 'स्योना और सुषदा' भी कहा, अर्थात् सुख देने वाले अच्छे आसन के रूप में देखा। फिर भी मन नहीं माना तो कहा– "तू ऊर्जस्वती और पयस्वती है।" इस प्रकार भूमि को रसवती-जल से आसिक्त और वनस्पतियों से पूर्ण बसने योग्य बना रखा था।

आज इसकी पहले से कहीं अधिक जरूरत है कि हम अपनी जमीन को पहचानें, उस पर वनस्पतियो की रक्षा करे और नदियो से स्वच्छ जल प्रवाहित होने दें।

प्रश्न-अभ्यास

1. "इस देश की नदियाँ ही इसकी श्री रही हैं।" भारतीय जीवन के आर्थिक एवं सांस्कृतिक पहलुओं के संदर्भ में इस कथन की विवेचना कीजिए।
2. "वनों की महत्ता और आवश्यकता को अस्वीकार करके न हम आर्थिक उन्नति के सोपान गढ़ सकते है और न स्वास्थ्य और सुख की कल्पना कर सकते हैं।" लेखक के इस कथन का औचित्य समझाइए।
3. भारत के कुछ प्रसिद्ध स्वयंजात वनों के उदाहरण दीजिए।
4. नदियों के आधार पर भारत के भौगोलिक विभाजन पर प्रकाश डालिए।
5. इस पाठ का आधार लेते हुए गंगा-यमुना नदियों के पौराणिक एवं सांस्कृतिक महत्त्व पर अपने विचार प्रकट कीजिए।
6. आज का मनुष्य वनस्पति और पानी के रिश्ते को भूलकर अपने को अकेला कैसे बना रहा है ?
7. वन-पर्वत और नदी के पारस्परिक अटूट संबंध को स्पष्ट कीजिए।
8. पृथ्वी को 'वेदि' क्यों कहा गया है ? पाठ में प्रयुक्त पृथ्वी के अन्य पर्यायों की उपयुक्तता बताइए।
9. जल-प्रदूषण में निरंतर वृद्धि क्यों हो रही है ? इससे क्या हानियाँ हैं?
10. इस पाठ में भारत की वन-व्यवस्था संबंधी विकास-योजनाओं के संबंध में क्या सुझाव दिए गए हैं ? आप उनसे कहाँ तक सहमत हैं ?
11. नदी. वनस्पति और ज़मीन के प्रति आज हमारा क्या कर्तव्य है?
12. अहिकुंडली और कदंबकोरक संबंधों से क्या तात्पर्य है ?
13. "विश्व में निरंतर बढ़ता प्रदूषण" विषय पर कक्षा में एक परिचर्चा का आयोजन कीजिए।

शब्दार्थ एवं टिप्पणियाँ

अद्भुत अपूर्व स्वप्न

पर्यंक	:	पलंग
युक्ति	:	तरकीब
चपल	:	चंचल
काल वश	:	समय के प्रभाव से
परित्याग	:	छोड़ देना
अपयश	:	बदनामी
निदान	:	आखिरकार
कोटि	:	करोड़
कंदरा	:	गुफा
उद्दंड	:	निरंकुश, शैतान
पूर्वोक्त	:	पहले कहा गया
सम्मुख	:	सामने
द्रोह	:	बैर
परनिंदा	:	दूसरे की निंदा
विभूषित	:	सज्जित
स्वार्थरत	:	स्वार्थ में लीन
अंगीकार	:	स्वीकार करना
अनुग्रह	:	कृपा
प्रवृत्त	:	लगा हुआ
कामधेनु	:	देवताओं की गाय जो मनोवांछित फल देती है।
हरित दूर्वा	:	हरी घास
कालक्षेप	:	समय व्यतीत करना
आतुर	:	व्याकुल

मैं कौन ?

हितैषी	:	भला चाहने वाला
वंचित	:	रहित
शिखासूत्र	:	चोटी और जनेऊ
अक्षमता	:	असमर्थता
तक़ाजा	:	बार-बार माँगना
अहंकार दंभ	:	घमंड, अभिमान
विरुद्धाचारी	:	विरुद्ध आचरण करनेवाला
अभव्य	:	अशोभनीय
प्रगाढ़ता	:	घनिष्ठता
असुधार्य	:	जो सुधारा न जा सके
तिर्यग् योनि	:	मानवेतर योनि, कीट-पतंगों के रूप में जन्म।

विजयी के आँसू

परिताप	:	पश्चाताप
अनंतर	:	पश्चात्
रुंड-मुंड	:	कटे हुए सिर और धड़
शर-शय्या	:	तीरों से निर्मित शय्या
अक्षौहिणी	:	चतुरंगिणी सेना का एक परिमाण (109350 पैदल, 65610 घोड़े, 21870 रथ और इतने ही हाथी)
नर-व्याघ्र	:	व्याघ्र के सदृश फुर्तीला और शक्तिशाली पुरुष।
बेधकता	:	बेधने का भाव
अतिरेक	:	अधिकता
अत्युक्ति	:	बढ़ा-चढ़ाकर कहना

विदीर्ण	:	आहत, फट जाना
अतिरथी	:	रथ पर सवार होकर युद्ध करने में वीर।
विधि-संयोग	:	भाग्यवश
विभोर	:	लीन
गर्हित	:	घृणित कार्य
प्रवृत्त	:	उन्मुख होना, लीन होना
अनुताप	:	पश्चाताप
निराकरण	:	हल, समाधान
विषण्ण	:	दुःखी

फतहपुर सीकरी

विजय तोरण	:	विजय द्वार
बुलंद	:	बड़ा, ऊँचा
विलासभूमि	:	सुख सुविधा का स्थान
परिणत	:	परिणाम या अंतिम रूप को प्राप्त।
मृगतृष्णा	:	छलावा
अद्वितीय कृति	:	ऐसी कृति जिसकी तुलना में दूसरी न हो।
स्वप्निल	:	स्वप्न सा, स्वप्न का
सहिष्णुता	:	सहनशीलता
धर्मानुयायी	:	धर्म को माननेवाले
वैषम्य	:	असमान, जटिलता
संकीर्णता	:	तंगी, क्षुद्रता
विशद	:	बड़ा
परिधि	:	घेरा
परित्यक्त	:	त्यागा हुआ
गह्वर	:	गड्ढा
विदीर्ण	:	फाड़ा हुआ, टूटा हुआ
अबुल फजल और फ़ैजी	:	दो भाई, जो अकबर के मित्र और उनके दरबार के नवरत्नों में अन्यतम थे।

दीन-ए-इलाही	:	अकबर द्वारा प्रवर्तित एक समन्वयात्मक धर्म।

उत्तरी स्वप्नपरी : हरित क्रांति

छिन्नमस्ता	:	जिसका मस्तक कटा हुआ हो, दुर्गा का एक रूप।
बालूचर	:	रेत का टीला
बंध्या	:	बाँझ
परती	:	ऐसी धरती जिसमें फसल न बोई गई हो।
धूसर	:	मटमैला
नरकंकाल	:	हड्डियों का ढाँचा
अप्रतिभ	:	स्तब्ध, उदास
मर्माहत	:	दिल पर चोट लगना
कोसी कवलित	:	कोसी द्वारा निगली हुई
शस्य श्यामला	:	हरी-भरी
टनेल (अं)	:	सुरंग
सिल्ट (अं)	:	मिट्टी की तलछट
अंतहीन प्रांतर	:	अतिविस्तृत भूभाग
आसन्न प्रसवा	:	जिसका प्रसव निकट हो
आहर	:	छोटा तालाब
पैन	:	नाली (आंचलिक शब्द)
मैलेग्नेण्ट मलेरिया	:	मलेरिया बुखार का एक खतरनाक रूप।
अरुण तिमुर सुण कोसी	:	उत्तरी बिहार की नदियों के नाम।

गुंडा

बलिष्ठ	:	मजबूत
पूस की रात	:	पौष के महीने की ठंडी रात।

सेल्हा	:	एक प्रकार का वस्त्र
ब्रह्मविद्या	:	आत्मा-परमात्मा के ज्ञान से संबंधित विद्या।
ध्वंस	:	नष्ट होना
विशृंखलता	:	शृंखलता रहित, बिखरा हुआ
नवागंतुक	:	अतिथि, मेहमान
धर्मोन्माद	:	धर्म का उन्माद, धार्मिक कट्टरता
अघोर रूप	:	शिव का एक रूप, जो घोर या भयानक रूप न हो।
बुद्धिवाद	:	बुद्धि या तर्क को प्रमाण मानने वाला पंथ।
विछिन्न	:	विभक्त, काटकर अलग किया हुआ।
सिंह-वृत्ति	:	शौर्य या पराक्रम की प्रवृत्ति।
प्रतिद्वंद्वी	:	प्रतियोगी
अलभ्य	:	अप्राप्य
विरक्त	:	उदासीन, अनासक्त
स्वाँग	:	हँसी-मजाक का खेल या तमाशा, हँसी-मजाक या धोखा देने के लिए बनाया हुआ रूप।
प्रहसन	:	परिहास, दिल्लगी, हास-परिहास प्रधान रूपक।
उच्छृंखलता	:	स्वच्छंदता, अनुशासन न मानना
सस्पृह	:	ईर्ष्या से अभिलाषापूर्ण
तमोली	:	पान वाला
सायत	:	मुहूर्त
विवर्ण	:	बदरंग, वर्णहीन
वैधव्य	:	विधूर होने का भाव
सापत्न्य ज्वाला	:	सौतिया डाह
असवर्णता	:	अछूत
व्यापीत	:	दुःखी
अन्यमनस्क	:	उदासी, मन न लगने का भाव

अनुसंधान	:	गवेषणा, खोज
उद्वेलित	:	भावाकुलता, उफना हुआ, उछलता हुआ
निमग्न	:	लीन
तिलंगा	:	अंग्रेज सिपाही
मंत्रणा	:	सलाह, मशविरा

नई संस्कृति की ओर

सार्थकता	:	अर्थपूर्णता, उपयोगिता
भोथरा	:	जिसकी धार कुंद (खराब) हो गई हो
पथराई	:	शुष्क या निर्जीव होना
परिपाटी	:	परंपरा
आलोक	:	प्रकाश
उक्ति	:	कथन
परिमित	:	सीमित
नाज़ुक	:	कोमल
निन्दक	:	निंदा करनेवाला
सरज़मीन	:	देश, राज्य
अट्टालिका	:	ऊँचे भवन
विरासत	:	पूर्वजों से प्राप्त
घुन	:	धीरे-धीरे नष्ट होना, एक प्रकार का कीड़ा जो अनाज और लकड़ी को धीरे-धीरे नष्ट करता है।
उपलब्धि	:	प्राप्ति
बहुलता	:	अधिकता
विचार-विनिमय	:	विचारों का आदान-प्रदान
प्रतिफलित	:	परिणाम या फल रूप में प्राप्त
आभिजात्य	:	कुलीन
शौर्य-बलिदान	:	वीरता एवं त्याग
पीर	:	पीड़ा, कष्ट

अवरुद्ध : रुका हुआ
निर्झरिणी : झरने से निकलनेवाली नदी
यकायक : अचानक
शैलश्रृंग : पर्वत की चोटी
पिंजरबद्ध : पिंजरे में बंद
विटपी : लता
कलरव : जल के प्रवाह से उत्पन्न ध्वनि
उल्लास : प्रसन्नता
विहगी : पक्षी
फुनगी : शाखा का सिरा

रसायन और हमारा पर्यावरण

अप्रत्याशित : जिसकी आशा न की गई हो।
आनुवंशिक : वंश परंपरा से आया हुआ।
क्षयकारी : नाश करनेवाली
उद्भासित : प्रकाशित
बहिःस्राव : बाहर निकलना
विधिवेत्ता : कानून के विद्वान्
संजाल : समूह
रासायनिक अभिक्रिया : जब दो या दो से अधिक पदार्थ मिलकर एक नया पदार्थ बनाते हैं तो उस क्रिया को रासायनिक अभिक्रिया कहते हैं। जैसे—हाइड्रोजन गैस ऑक्सीजन की उपस्थिति में जलकर पानी बनाती है।
रासायनिक यौगिक : वह पदार्थ जो दो या दो से अधिक तत्त्वों के रासायनिक अभिक्रिया से बनते हैं उसे रासायनिक यौगिक कहते हैं। जैसे सोडियम क्लोराइड, पानी, चीनी आदि।

ऑक्सीकरण	:	ऑक्सीकरण ऐसी अभिक्रिया को कहते हैं जिसमें ऑक्सीजन किसी पदार्थ से संयोग करती है या हाइड्रोजन गैस निकालती है । जैसे मैग्नीशियम ऑक्सीजन से मिलकर मैग्नीशियम ऑक्साइड बनाता है ।
कार्बनिक विलायक	:	वह कार्बनिक यौगिक जिसका उपयोग विलायक के रूप में किया जाता है । जैसे क्लोरोपा में, कार्बन टेट्राक्लोराइड कार्बन डाइसल्फाइड आदि कार्बनिक विलायक हैं।
थैलीडोमाइड	:	एक कार्बनिक यौगिक जिसका उपयोग दवाओं में होता है।
ऐस्बेस्टस	:	एक यौगिक जिससे छत बनाने की चादर बनती है।
पौलीक्लोरीनेटिड-वाइफे-निल	:	एक कार्बनिक यौगिक जिससे कीटनाशी दवाई बनाई जाती है।
परावैद्युत (हाईइलेक्ट्रिक)	:	पदार्थ का ऐसा गुण जिससे इसकी विलयन क्षमता शक्ति बढ़ जाती है।
मरकरी सेल प्रौद्योगिकी	:	कास्टिक सोडा बनाने के लिए वह प्रौद्योगिकी जिसमें पारा इस्तेमाल किया जाता है।
स्नायुरोग	:	संवेदना स्थानों को प्रभावित करनेवाले रोग
मिनामाटा	:	जापान का एक द्वीप
डाइ इंटरमीडिएट	:	वह कार्बनिक यौगिक जो रंग बनाने के काम आते हैं।
गैसीय सत्सर्जक	:	गैस छोड़ने या निकालनेवाला
कीटनाशी	:	जहरीली दवाएँ जो पौधों के कीड़ों को मारने के काम आती हैं।

जीप पर सवार इल्लियाँ

इल्ली	:	फ़सल को नुकसान पहुँचाने वाला कीड़ा
उन्मूलन	:	जड़ से उखाड़ना, समाप्त करना
वक्तव्य	:	भाषण
अधिष्ठात्री	:	नियामिका
निःशंक	:	बिना किसी शंका के

भारत-कोकिला

विरुद	:	यश, कीर्ति
नाइटिंगेल ऑफ़ इंडिया	:	भारत कोकिला। इस शब्द का शाब्दिक अनुवाद ''भारत की बुलबुल है''। किन्तु भारतीय साहित्यिक परिवेश में भारत – कोकिला कहा जाता है, जो अधिक समीचीन भी है।
मुकुर	:	दर्पण
प्रतिभासित	:	प्रकाशित, आभासित
संस्कारिता	:	परिशोधित, निखरा हुआ रूप
आह्लादित	:	आनंदित
राजसिक	:	राजसी, उच्च कुलीनता
प्रभविष्णुता	:	प्रभावपूर्णता, प्रभावशीलता
अविस्मरणीय	:	न भूलने योग्य
काव्य विवेक	:	काव्य सौन्दर्य समझने की बुद्धि
रसज्ञान	:	काव्य-रसों का ज्ञान
समृद्ध	:	धनी
अरदास	:	प्रार्थना, विनती
नंगा फकीर	:	नंगा रहने वाला फकीर (गांधी जी के लिए प्रयुक्त शब्द)
विरासत	:	उत्तराधिकार
साइमन कमीशन	:	ब्रिटिश सरकार ने सन् 1928 में भारत की राजनैतिक स्थिति की जाँच के लिए एक कमीशन की स्थापना की थी

		जिसके सभी सदस्य अंग्रेज़ थे । साइमन उसके अध्यक्ष थे, इसलिए इस कमीशन को साइमन कमीशन कहा गया । राष्ट्रीय कांग्रेस ने इसके बहिष्कार का निश्चय किया था।
संवेदन	:	भावानुभूति
कवि अभिप्राय समय	:	काल्पनिक होते हुए भी अनेक बातों को कवियों ने सत्य मान लिया है और कविता में उनका प्रयोग किया जाता है।
मरथिल्ले	:	दुबले-पतले, मरे हुए से।

नदी बहती रहे

समृद्ध	:	उन्नत, खूब बढ़ा हुआ
विहार	:	क्रीड़ा करना, विचरण, घूम फिर कर मनोरंजन।
आवाह्न	:	बुलाना, पूजा मे किसी देवता को मंत्र द्वारा बुलाना।
गंगा च यमुना चैवगोदावरी सरस्वती। नर्मदा-सिंधु कावेरी जलेस्मिन् सन्निधिं कुरु।	:	गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु कावेरी नदियों के जल से समीपता प्राप्त करें।
शस्य-श्यामल	:	अनाज आदि से हरा-भरा।
अहि-कुंडली कदंबकोरक संबंध	:	अभिन्न रूप से जुड़े रहना, जिस प्रकार सॉप कुंडली के साथ अभिन्न रूप से संबद्ध है और कदंब अपनी नई उगी पत्तियों के साथ ।
विच्छिन्न	:	अलग होना
मोक्षदायिनी	:	मुक्ति देने वाली
विष्णुपदी, जाह्नवी; मंदाकिनी और भगीरथी	:	गंगा के पर्यायवाची शब्द

बिंदुसार, पद्महृलद अनोतत्त	:	झीलों के नाम
गंगोत्री	:	हिमालय में वह स्थान जहाँ से गंगा निकलती है।
आपूरित	:	युक्त, भरी-पूरी
उच्छिष्ट	:	जूठन, कूड़ा-कर्कट
सिकतामेरु	:	बालू के पहाड़
पुण्यतोया	:	पवित्र जल वाली नदी
समुद्रांत	:	समुद्र के अंत तक
वनाच्छादित	:	वनों से घिरी
यमुनोत्री	:	यमुना का जन्म स्थल
उद्गम	:	निकास
अनुप्राणित	:	प्रेरित, पोषित
प्रचुर	:	पर्याप्त
स्थापत्यकला	:	भवन-निर्माण की कला
संवर्धन	:	वृद्धि-विकास
जलागम क्षेत्र अधिकरण	:	जलसंचय क्षेत्र से संबंधित विभाग।
परिप्रेक्ष्य	:	संदर्भ
आवृत्त	:	ढका हुआ
स्वयंजात वन	:	प्राकृतिक वन
समन्वित	:	मिला हुआ
समग्रता	:	पूर्णता
पर्यविक्षण	:	चारों तरफ़ देखना
सर्वेक्षण	:	आदि से अंत तक भली प्रकार देखना
वर्ण्य-विषय	:	जिस विषय का वर्णन किया गया हो
आनुवंशिक	:	वंश परंपरा से प्राप्त
परिस्थितिकीय	:	परिस्थिति और पर्यावरण से संबंधित।
उपहासास्पद	:	उपहास करने योग्य
ऊर्जस्वती	:	तेजवाली
पयस्वती	:	जल से युक्त, नदी